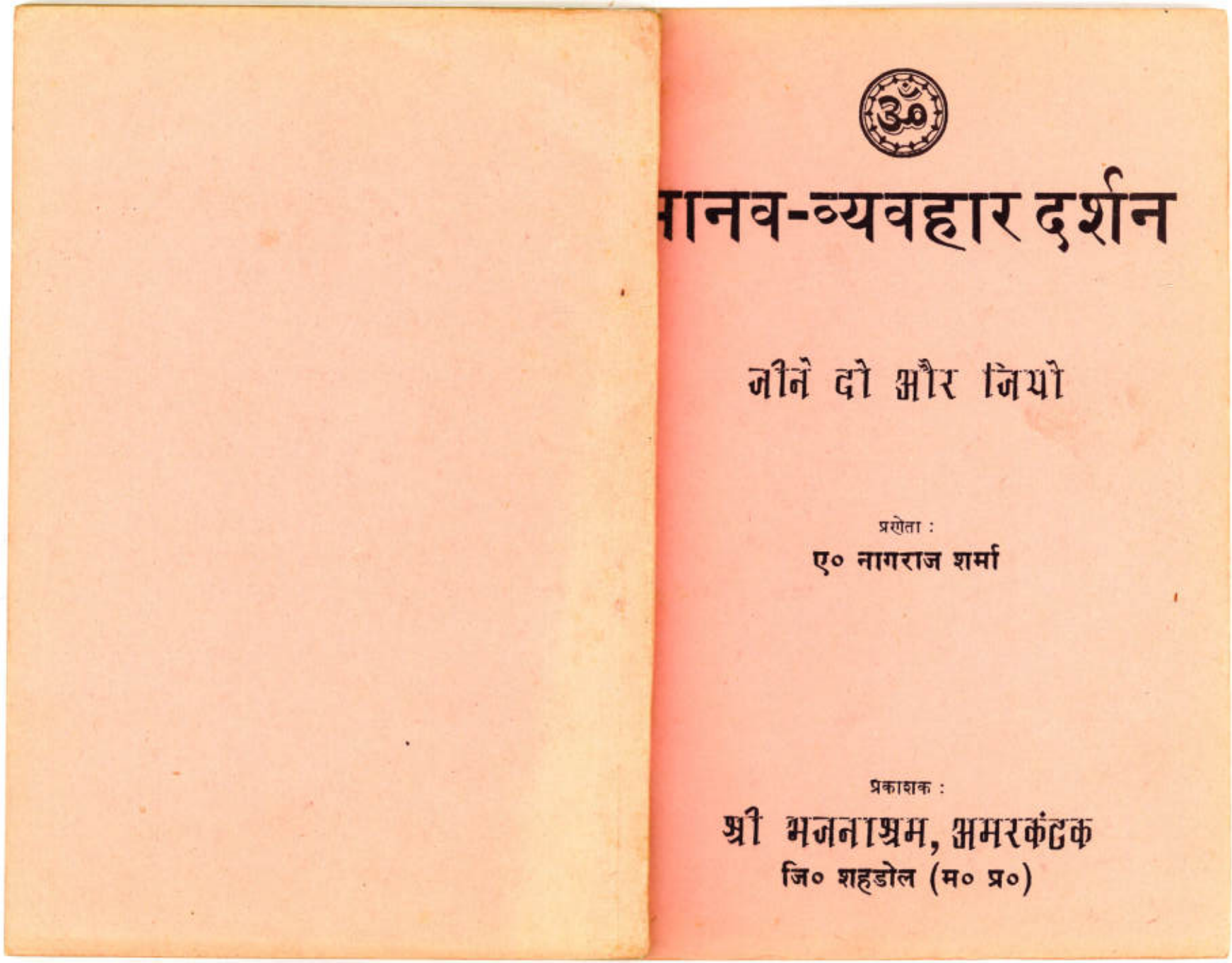

मानव-व्यवहार दर्शन

जीने दो और जियो

प्रणेता :
ए० नागराज शर्मा

प्रकाशक :
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक
जि० शहडोल (म० प्र०)

मानव–व्यवहार–दर्शन

जीने दो और जियो

प्रणेता :
ए० नागराज शर्मा

प्रकाशक :
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक
जि० शहडोल (म० प्र०)
मूल्य : २ रुपया

प्रकाशक :
श्री भजनाश्रम, अमरकंटक
जिला-शहडोल (म. प्र.)

प्रथम आवृत्ति : १००० प्रतियाँ

सर्वाधिकार सुरक्षित

मुद्रक :
नवज्योति प्रेस,
सेठ भीकचन्द मार्ग,
मथुरा (यू० पी०)

मंगल-कामना

भूमि स्वर्गतांयातु मनुष्योयातु देवताम् ।
धर्म विस्तरतांयातु नित्यंयातु शुभोदयं ।।

भावार्थ—भूमि स्वर्ग हो, मानव देवता हो, धर्म सफल हो,
नित्य मंगल हो ।

सन्देश

जाना हुआ को मान लो,
माना हुआ को जान लो ।

—लेखक

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक "मानव-व्यवहार-दर्शन" में पूज्यनीय श्री ए० नागराज की लम्बी तपस्या एवं प्रकृति-प्रदत्त प्रेरणाओं की अनुभूतियों का सूक्ष्म सूत्र रूप में संकलन है। जिस प्रकार जीवन को सुखी बनाने हेतु विघ्न-बाधाओं तथा असामाजिक तत्वों से सुरक्षित रहने के लिये शासन की विधान-व्यवस्था है, उसी प्रकार मानव-जीवन प्रसून को प्रकृति के प्रांगण, प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में निर्बाध गति से विकसित होने देने के लिये आध्यात्मिक स्तर पर, महाराज जी की महती अनुकम्पा से जो भी उपदेशामृत प्राप्त हुए हैं, वही इस पुस्तक के रूप में प्रेमी पाठकों को समर्पित है।

लेखक श्री ए० नागराज शर्मा ने प्रकृति के अंचल में सपत्नीक अमरकंटक आकर मां नर्मदा की साक्षात गोद में २२ वर्ष लम्बी तपस्या की है। उसी तपस्या के फलस्वरूप इस पुस्तक में जितने भी सूत्र दिये हैं, वह सीधे प्रकृति से ही उन्हें प्राप्त हुए हैं। इस सबका एक ही उद्देश्य है—मानव जनजाति आज हिंसा, आंतक, विग्रह, निग्रह, द्रोह, विद्रोह, छल, कपट, पाखण्ड, हीनता, दीनता और क्रूरता से मुक्त होकर, मानव-मात्र में सहज स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने की कामना है। उसी शृङ्खला के अनुसार यह प्रयास है। आपने अपने सूत्रों को अधिकांश में परिभाषा की शैली को अपनाते हुए ही मानव-जीवन के समस्त व्यवहारों की अभिव्यंजना की है।

आज के वैज्ञानिक युग में मानव अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिये सतत् संघर्ष कर रहा है। विज्ञान की विध्वंशकारी प्रवृत्तियां अपने पूर्ण आक्रोश

के साथ जगत् के स्वरूप को निगलने के लिए मुँह बाए खड़ी है। भौतिकवाद अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच कर आध्यात्मिकता को दबा ही देना चाहता है। इन्हीं, सभी कठिनाइयों में संघर्षरत मानव को किस प्रकार विज्ञान की सहायता से भौतिक समृद्धि और विवेक से आध्यात्मिकता एवं शान्ति उपलब्ध हो सकेगी। वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक पद्धति का समुचित सन्तुलन प्राप्त किया जा सके – यही "मानव-व्यवहार-दर्शन" का लक्ष्य है।

मानव, मानव बनकर जिये, जीवन के सुख और शान्ति का अनुभव कर सके और जीवन में विस्तार प्रगति करता रहे—उसी के कुछ आधार-तथ्य इस पुस्तक में संगृहीत हैं, जिनका महत्व प्रेमी पाठक मनन, चिन्तन एवं वैज्ञानिक क्रियाशीलता के आधार पर ही ग्रहण कर सकेंगे। इसी सर्वजनहिताय की भावना से उत्प्रेरित होकर स्वामी जी की दीर्घ तपस्या से प्राप्त इन पुष्पों को "मानव-व्यवहार-दर्शन" के रूप में उन्हीं की आज्ञा से मानव समाज को सादर समर्पित है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख भाग्भवेत॥

—गणेशदत्त कटारा
विकास-सहायक
निवास : मण्डला)

तिथि : २७. ५. ७२

अनुक्रमणिका

क्रम		पृष्ठ-संख्या
१.	प्रार्थना	६
२.	वन्दना	६
३.	सृष्टि दर्शन	१०
४.	मानव का महत्व	१५
५.	व्यवहार-विश्लेषण	१६
६.	विश्राम (समाधान)	१७
७.	सुख की कामना	२०
८.	व्यवहार-भेद	२१
९.	दर्शन	२६
१०.	सबीज एवं निर्बीज	२७
११.	आसक्ति एवं निरासक्ति	३१
१२.	अवलोकन (निरीक्षण)	३३
१३.	शक्ति एवं शक्त	३७
१४.	लाभ की कामना	३९
१५.	व्यवहार	४२
१६.	न्याय एवं अवसर	५४
१७.	सापेक्ष एवं निरपेक्ष	५९
१८.	सफलता की कामना	६२
१९.	पोषक एवं शोषक	६६
२०.	रहस्यता से मुक्ति	७१
२१.	योग	७६
२२.	आनन्द की अनुभूति	७८

मानव-व्यवहार दर्शन

भूमिः स्वागतम् यातु मनुष्यो यातु देवताम् ।
धर्मो सफलताम् यातु नित्यं यातु शुभोदयम् ॥

प्रार्थना

१—नित्य सत्य शुद्ध बुद्ध परमात्मने नमः ।

२—जो तीनों कालों में एक-सा विद्यमान हो, उसको नित्य, जो तीनों कालों में एक-सा भासमान हो, उसको सत्य, जो तीनों कालों में एक-सा सुखप्रद हो, उनको शुद्ध एवं जो तीनों कालों में एक-सा बोधगम्य हो, उसे बुद्ध की संज्ञा दी जाती है ।

३—उक्त सभी लक्षणों वाली सत्ता को परमात्मा की संज्ञा दी जाती है, जिसको लोकेश, ईश्वर, ज्ञान, व्यापक, निरपेक्ष शक्ति के नाम से भी जाना जाता ।

वन्दना

१—मैं कृतज्ञतापूर्वक उन सब सुपथ-प्रदर्शकों की वन्दना करता हूँ, जिससे यथार्थता के स्रोत आज भी जीवित हैं ।

२—जिस किसी से भीउन्नति की प्राप्ति में सहायता मिली हो, उसकी स्वीकृति को कृतज्ञता की संज्ञा दी जाती है ।

३—समाधान की निश्चित दिशा को सुपथ की संज्ञा दी जाती है।

४—अकृतिमतापूर्वक (आडम्बरहीन ढङ्ग से) की गई अभिव्यक्ति, को यथार्थ-स्रोत की संज्ञा दी जाती है।

५—निर्विरोध, अङ्गीकार किये गये अनुकरण-प्रयास एवं प्रवृत्ति को, गौरवता की संज्ञा दी जाती है। गौरवता को व्यक्त करने के लिये की गई चेष्टा को, वन्दना की संज्ञा दी जाती है।

६—निर्विरोध में सुख, सुख में स्नेह और स्नेह में ही निर्विरोधता निहित है।

सृष्टि दर्शन

१—मानव ने सृष्टि-दर्शन करने का प्रयास किया है।

२—सृजन, विसर्जन, शोषण एवं पोषण के भेद से सृष्टि-दर्शन होता है।

३—छैः ओर से सीमित पदार्थ-पिण्ड को इकाई की संज्ञा दी जाती है।

इकाई + इकाई = सृजन
इकाई — इकाई = विसर्जन
इकाई + अनुकूल इकाई = पोषण
इकाई — पोषण इकाई = शोषण।

४—पदार्थ की सङ्गठन प्रक्रिया को उद्भव, (सृजन), दोहदवादी प्रक्रिया को पालन (पोषण) एवं दोहद की विपरीतवादी प्रक्रिया को शोषण तथा विघटनवादी क्रिया प्रणाली को प्रलय की संज्ञा दी जाती है।

५—पद-भेद से अर्थ को प्रस्तुत करने वाली वस्तुओं को पदार्थ की संज्ञा दी जाती हैं।

६—सम्पूर्ण वस्तुओं को चेष्टा प्रदान करने हेतु प्राप्त सत्ता की "निरपेक्ष की शक्ति" संज्ञा है।

७—सम्पूर्ण पदार्थ अपनी आणविक स्थिति में सचेष्ट है, इसलिये उसे शक्ति प्राप्त है, शक्ति के बिना पदार्थ में चेष्टा और पदार्थ के बिना शक्ति का परिचय या प्रतीति नहीं हो सकती।

८—उक्त प्रकार से शक्ति व पदार्थ का अस्तित्व तीनों काल में है। पदार्थ एवं शक्ति में इतना ही अन्तर परिलक्षित होता है कि शक्ति हर काल में एवं सभी स्थान में प्राप्त है। शक्ति न हो, ऐसा कोई स्थान अभी तक प्राप्त नहीं है, किन्तु पदार्थ न हो, ऐसे स्थान प्राप्त हैं, काल नहीं।

९—पदार्थ का संगठन तथा अवस्था सहित राशि-भेद में ही उसकी मात्रा के रूप की अवधियाँ (सीमायें) हैं।

१०—पदार्थ घनीभूत तरल एवं वायु के रूप में है।

११—सम्पूर्ण पदार्थ तात्विक एवं मिश्रित रूप में व्यक्त हैं।

१२—सजातीय आणविक समूह गठन को तात्विक एवं विजातीय आणविक गठन को मिश्रित संज्ञाओं से जाना जाता है।

१३—मिश्रण से—रासायनिक परिणाम एवं भौतिक परिणाम होते हैं।

१४—मध्य परमाणु के जो आश्रित परमाणु हैं, उनकी संख्या-भेद से ही अणु की जाति एवं अवस्था का निर्णय होता है।

१५—पदार्थ राशि के परस्पर संघर्ष से प्राप्त वेगमय पदार्थ-व्यूह को वायु की संज्ञा दी जाती है, जिसके योग से जल एवं ताप का भी प्रसव है।

१६—मिलन ही योग संज्ञा है।

१७—ऐक्य एवं सहवास भेद से योग है।

१८—जिस योग के अनन्तर विलगीकरण न हो, उस मिलन को 'एक्य' की संज्ञा दी जाती है।

१९—जिस योग के अनन्तर विलगीकरण हो, उस मिलन को सहवास की संज्ञा दी जाती है।

२०—सहवास में ही प्रेरणा एवं विवशता का प्रसव तथा अनुभव है।

२१—मिलन के अनन्तर उन्नति की ओर प्राप्त सम्वेगों को प्रेरणा की संज्ञा दी जाती है, उसके विपरीत में विवशता की संज्ञा दी जाती है।

२२—"अधिकमूल्य की ओर" प्रगति की उन्नति संज्ञा है।

२३—दीर्घ कालीन परिणाम व अपरिणाम को अधिक मूल्य की संज्ञा दी जाती है।

२४—क्रान्तिवादी सहवास से उभय विकृतियाँ एवं प्रेरणावादी सहवास से उभय सुकृतियाँ हैं।

२५—पदार्थ राशि के संघर्ष एवं मिश्रण भेद से, समस्त रस एवं उपरस का प्रसव है।

२६—मृद, पाषाण, मणि, धातु—प्रधानतः पदार्थ की ये चार जातियाँ हैं।

२७—उर्वरा एवं अनुर्वरा के भेद से मिट्टी (मृदु), कठोर एवं अकठोर भेद से पाषाण, किरणग्राही एवम् किरणश्रावी के भेद से मणि, तथा तरल एवं अतरल के भेद से धातु हैं। धातु विकिरण श्रावी एवम् अश्रावी तथा विकिरण ग्राही के भेद से हैं।

२८ – बीज पाकर अनेक बीज को तैयार करने वाली क्षमतापूर्ण मिट्टी को उर्वरा और उससे विपरीत मिट्टी को अनुर्वरा की संज्ञा दी जाती है।

२९—भार को अधिक सहन करने वाले पाषाण को कठोर एवं कम सहन करने वाले को 'अकठोर' की संज्ञा दी जाती है।

३०—किसी इकाई में अन्तर्निहित अग्नि के प्रभाव से प्रसारण क्रिया की "विकिरण" संज्ञा है।

३१—इकाई की बहिर्निहित अग्नि को 'ताप' की संज्ञा दी जाती है। (अ) ताप की प्रतिबिम्ब एवं अनुबिम्ब क्रिया की किरण संज्ञा है।

३२—विकिरण एवम् किरण, माध्यम पाकर पारदर्शक एवम् अ—पारदर्शक भेद से क्रिया में रत हैं।

३३—विकिरण एवम् किरण माध्यम भेद से, जो–पोषक एवम् शोषक हैं।

३४—उक्त पदार्थ राशि को संगठित—पिण्ड को ग्रह, तथा गोल एवम् लोक को 'भूमि' की संज्ञा से जाना जाता है।

३५—जिस इकाई के सभी ओर आकाश हो, उस इकाई को भूमि तथा ग्रहादि की संज्ञा से जाना जाता है।

३६—हर एक भूमि तथा ग्रहादि आकाश में शून्यांकर्षण की स्थिति में हैं। ऐसी हर इकाई अपनी गति के अनुसार आकाश में स्थान प्राप्त किये हुए है।

३७—हर इकाई धनाकर्षण की अवस्था में किसी की ओर आकर्षित है। ऋण-आकर्षण की स्थिति में किसी को आकर्षित करती है तथा शून्याकर्षण की स्थिति में हर इकाई स्वतन्त्र है।

३८—भार, आकर्षण से सापेक्षित, आकर्षण, परस्परता से सापेक्षित, परस्परता, गुरुता व लघुता से सापेक्षित गुरुत्व व लघुत्व सापेक्ष शक्तियों से सापेक्षित, सापेक्ष-शक्तियाँ क्रिया से सापेक्षित, क्रियायें पदार्थ से सापेक्षित पदार्थ मात्र निरपेक्षित शक्ति में आश्रित निरपेक्ष शक्ति में ही सम्पूर्ण सृष्टि के स्थिति-लय कार्य है।

३९—किसी भी भूमि पर पूर्णतः सृष्टि तभी सम्भव है, जब वह अपने में आवश्यक सम्पूर्ण रस, उपरस एवम् वायु से समृद्ध हो जाय।

४०—उक्त प्रकार से इस असीम अवकाश में अनन्त भूमि अपने-अपने प्रगति के अनुसार पूर्ण विकसित, अर्द्ध-विकसित, अल्प-विकसित एवं अविकसित अवस्था में परिलक्षित हैं।

४१—समृद्धि भूमि पर सृष्टि चार अवस्था में गण्य है।

४२—कोष-गठन-भेद से अवस्था की गणना है।

४३—अनन्त रचनायें पांच कोषों के गठन भेद के अन्तर्गत ही परिलक्षित है। जो अन्नमयी, प्राणमयी, मनोमयी आनन्दमयी एवम् विज्ञानमयी कोषों की संज्ञा से जाने जाते हैं।

४४—हर एक इकाई में ग्रहण करने वाले अंग को अन्नमयी कोष, प्रेरणा पाने वाले अंग को प्राणमयी कोष, चयन करने वाले अंग को मनोमयी कोष, सुख दुःख आदि विषमता को ग्रहण करने वाले अंग को आनन्दमयी-कोष, एवं जिस अंग से विशेष ज्ञान होता है, उसे विज्ञानमयी-कोष की संज्ञा दी जाती है।

४५—पदार्थ अवस्था में दो कोषों का गठन है। वे अन्न एवं प्राणमयी कोष हैं।

४६—प्राणावस्था में अन्न, वनस्पति मात्र हैं, जिनमें तीन कोषों का गठन है, जो अन्नमयी प्राणमयी एवं मनोमयी कोष हैं।

४७—जीवावस्था—में मनुष्येतर सभी अण्डज एवं पिण्डज है। इनमें चार कोषों का गठन है। वे अन्न, प्राण, मन एवम् आनन्दमयी कोष हैं।

४८—ज्ञानावस्था में मानव है। जिनमें पाँच कोषों का गठन है, वे अन्न, प्राण, मन, आनन्द एवम् विज्ञानमयी कोष हैं।

४९—पदार्थावस्था में क्रियायें, संगठन, विघटन एवम् संगठन विघटन भेद से हैं।

५०—प्राणावस्था में क्रियायें उद्भव, विभव, प्रलय सहित सारक, मारक एवम् सारक-मारक भेद से है।

५१—जीवावस्था में क्रियाये उद्भव, विभव, प्रलय, आहार, निद्रा, भय, मैथुन सहित क्रूर-अक्रूर एवम् दूरादूर भेद से हैं।

५२—ज्ञानावस्था में क्रियायें उद्भव, विभव, प्रलय, विषय-चतुष्टय ईषणात्रय सहित निर्भ्रान्त, भ्रान्त एवम् भ्रान्ताभ्रान्त स्थिति में हैं।

मानव का महत्व

(१) मानव ने सृष्टि में अपने महत्व को जानने-पहचानने का भी प्रयास किया है।

(२) मानव ही एक ऐसी इकाई है, जिसमें जो विज्ञान व विवेक का प्रादुर्भाव है। भूत, भविष्य, वर्तमान, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, कारण, गुण, गणित तथा आत्मा के अमरत्व शरीर के नश्वरत्व एवम् व्यवहार के नियम के रूप में व्यक्त हुए हैं।

(३) मानव कर्म करते समय स्वतन्त्र एवम् उसका फल भोगते समय परतन्त्र है।

(४) मानव द्वारा अनन्त जानकारी की प्रतीक्षा, खोज, प्रयोग, चरितार्थ तथा अनुकरण क्रियाओं को अपने विकासानुसार किया गया है इसलिये मानवीय जीवन को प्रगतिवादी माना और जाना गया है।

(५) मानव ज्ञानावस्था की सृष्टि एवम् इकाई होने के कारण, पूर्व वर्णित सृष्टि जीव, वनस्पति, पदार्थ, में निहित सम्पूर्ण गुण स्वभाव और धर्म मानव में निहित है।

(६) मानव को जो जैसा है, उसको वैसा ही समझने एवम् अपने मनोनुकूल कल्पना करने का भी अधिकार है। यही मानवीय बुद्धि की विशेषता है।

(७) मानव स्वयं में निर्भ्रान्त ज्ञान का अधिकारी होने पर ही सम्पूर्ण सृष्टि को स्पष्ट रूप में देख सकता है।

व्यवहार विश्लेषण

(१) मानव का जो व्यवहार–दर्शन है, उसका विश्लेषण करने की कामना है।

(२ मनाकार को साकार करने वाले तथा मन: स्वस्थता आशावादी को 'मानव'; एक से अधिक एकत्र होने से जो श्रम है, उसको व्यवहार, उसे देखने और पहिचानने की क्रिया को दृष्टि, दृष्टि के द्वारा प्राप्त जानकारी को दर्शन तथा उसको व्यक्त करने हेतु प्राप्त बौद्धिक संवेग को कामना, तथा परिभाषा को विश्लेषण की संज्ञा दी जाती है।

(३) संधान एवं अनुसन्धान के क्रम-भेद से वह ह्रास एवम् विकास के परिणाम भेद से, मानव का मनाकार साकार है। भोग एवम् मोक्ष के लक्ष्य एवम् प्रयास भेद पर मानव के मन की स्वस्थता की आशायें हैं।

(४) शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्धेन्द्रियों द्वारा प्राप्त जानकारी और चेष्टा को संधान, केन्द्रीकृत मस्तिष्क के द्वारा समष्टि ज्ञानराशि से प्राप्त जानकारी व चेष्टा को अनुसंधान की संज्ञा दी जाती है।

(५) कैसी और क्यों की पूर्ति होना ही "समाधान" और इसके विपरीत 'समस्या' है।

(६) समस्या की ओर 'ह्रास' और समाधान की ओर 'विकास' है। वर्तमान से पूर्व जो भौतिक एवम् रासायनिक क्रियायें थीं उनसे भिन्न स्वभाव-बादी प्रक्रिया ही परिणाम है।

(७) धन ऋण-भेद से परिणाम है।

(८ उन्नति की ओर धन परिणाम व विपरीत में ऋण परिणाम संज्ञा है। धन परिणाम बराबर विकास और ऋण परिणाम बराबर ह्रास।

(९) ज्ञानावस्था का धन परिणाम समाधान की ओर, जीवों का धन परिणाम मानव का अनुकरण करने की ओर, अन्नवनस्पतियों का धन

परिणाम पोषण की ओर पदार्थ का धन परिणाम सुधातु-मणि की ओर है, इसके विपरीत में ऋण परिणाम है।

(१०) समाधान की दिशा में की गई आवश्यकीय विधिविहित प्रणाली से ही मानव ने सफलता का अनुभव किया है और उसके विपरीत चलने पर असफल हुआ है।

(११) सुख की आशा से ओत-प्रोत मानव के द्वारा प्रादुर्भाव होने वाले सम्पूर्ण नियम (जानकारी) मात्र मानव को आवश्यकीय एवम् अनावश्यकीय भेद से उपलब्ध हैं। इनमें से सुख पोषक वर्गीय नियमों को विधि तथा इसके विपरीत नियमों को निषेध की संज्ञा दी जाती है। ऐसे विधि-निशेधात्मक ज्ञान (जानकारी) को व्यवहार दर्शन की संज्ञा दी जाती है।

विश्राम (समाधान)

१—मानव मात्र विश्राम की आशा एवम् प्रयास में ही है।

२—समाधान की ओर विश्राम का और समस्या की ओर श्रम का अनुभव मानव ने किया है।

३—विकास व ह्रास के भेद से अवस्था, अवस्था-भेद से आशा-भेद से आकर्षण, आकर्षण भेद से प्रतिकर्षण भेद से आसक्ति, आसक्ति-भेद से विवशता, विवशता-भेद से संवेग, संवेग-भेद से कर्म कर्म-भेद से फल, फल-भेद से समस्या व समाधान, समस्या व समाधान भेद से ही विकास व ह्रासवादी प्रगतियाँ हैं।

४—मानव का विकास, बौद्धिक समाधान व भौतिक समृद्धि से है।

५—विवेकपूर्ण विचार से बौद्धिक समाधान, विज्ञान पुर्ण नियम सहित किये गये व्यवसाय से भौतिक समृद्धि उपलब्ध है।

६—स्थूल, एवम् सूक्ष्म कारण भेद से ही दर्शन है।

७—रूप, रस एवं वायु की जानकारी को स्थूल जानकारी, सापेक्ष शक्ति एवं मन वृत्ति चित्त की जानकारी को सूक्ष्म जानकारी, निरपेक्ष शक्ति एवम् उसका बोध करने वाली बुद्धि तथा उसके सुखानुभव करने वाले सत्स्वरूप की जानकारी को 'कारणात्मक जानकारी" की संज्ञा दी जाती है।

८—केवल क्रिया के रूप में ही सम्पूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं, वे रूप और शब्द के भेद से ही है। जिनका मानव के द्वारा स्फुरण, प्रेरणा, क्रान्ति, संवेग, आवेग तथा प्रयोग के रूप में प्रादुर्भाव होता है।

९—संयोग से प्राप्त वेग को संवेग आवश्यकतानुसार प्राप्त योग को आवेग और प्रयासपूर्वक प्राप्त योग को प्रयोग की संज्ञा दी जाती है।

१०—आकर्षण + प्रतिकर्षण के बराबर आसक्ति का है।

११—आसक्ति के वेग को संवेग के नाम से जाना जाता है।

१२—उद्भव, विभव, प्रलय और भोग के लक्ष्य-भेद से संवेग है।

१३—पूर्ण अर्थ को व्यक्त करने के लिये प्रयुक्त भाषा को परिभाषा, भाव को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त शब्द व्यूह को भाषा तथा मौलिकता को भाव-संज्ञा दी जाती है।

१३—(अ) मौलिकता बराबर वस्तु-स्थिति।

१४—निश्चित क्रिया का निर्देश करने हेतु प्रयुक्त शब्द को अर्थ-सहित शब्द और इसके विपरीत प्रयुक्त शब्द को निरर्थक शब्द की संज्ञा दी जाती है।

१५—जो जैसा है, वही उसकी मौलिकता है।

१६—प्रत्येक इकाई में रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म निहित है, जिसके दर्शन से ही मौलिकता का निर्णय होता है।

१७—छः ओर से सीमित पदार्थ-पिण्ड को रूप, एक से अधिक एकत्र

होने से उत्पन्न प्रभाव को गुण, गुण की उपयोगिता को स्वभाव तथा जो जिसकी धारणा है, वह उसका धर्म है।

१८—जिससे जिसका वियोग हो सके उसे 'धारणा' की संज्ञा दी जाती है।

१९—धारणा के अनुकूलवादी चेष्टा को स्फुरण और उसकी प्रतिकूलता-वादी चेष्टा को क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

२०—समाधान की ओर प्राप्त प्रेरणा को अनुकूल एवम् स्फुरण तथा समस्या की ओर प्राप्त विवशता को क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

२१—आकार, आयतन, घन भेद से रूप, सम, विषम, मध्यस्थ भेद से प्रभाव, उद्भव, विभव, प्रलय भेद से स्वभाव और अस्तित्व पुष्टि आशा एवं सुख के भेद से धारणायें हैं, जो क्रम से पदार्थ वनस्पति, जीव व मानव की अवस्था में निहित है।

२२—स्फुरणवादी चेष्टा मात्र स्व-सापेक्ष, क्रान्तिवादी चेष्टा मात्र पर-सापेक्ष है।

२३—स्व-सापेक्षता में विश्राम, एवम् पर-सापेक्षता में श्रम का अनुभव है।

२४—स्व-धर्म ही स्व-सापेक्ष है, इसके विपरीत धर्म को पर-सापेक्ष की संज्ञा दी जाती है।

२५—मानव सुखधर्मी है। इसीलिये प्राप्त कर्तव्य को सुख के पोषण-वादी नियम सहित नीतियों द्वारा पालन करना ही या पोषण करना ही स्वधर्म है।

२६—कुटुम्ब, समाज, एवं शासन-दत्त भेद से कर्त्तव्य होता है, जिसको निष्ठा, नियम एवम् सत्यतापूर्वक पालन करने पर ही मानव में विशेष प्रतिभा एवं सफलता होती है, इसके विपरीत प्राप्त प्रतिभा एवम् सफलता भी निरस्त होती है।

२७—दूसरे का प्रभाव, उसकी आवश्यकता व अवस्था के अनुसार ही है।

२८—विकास भेद से ही अवस्था एवम् आवश्यकता का प्रादुर्भाव होता है।

२९—पदार्थ का विकास एवम् अवस्था, उसकी इकाई के सङ्गठन-विघटन भेद से है।

३०—संगठन-विघटन भेद से रूप, रूप-भेद से विकास, विकास भेद से क्षमता, क्षमता भेद से माध्यम, माध्यम भेद से अवस्था, अवस्था भेद से आवश्यकता, आवश्यकता-भेद से चेष्टा, चेष्टा-भेद से प्रगति, प्रगति-भेद से परिणाम, परिणाम-भेद से योग व वियोग, योग व वियोग के भेद से ही सङ्गठन एवम् विघटन है।

सुख की कामना

(१) सम्पूर्ण व्यवहार से मानव ने सुख की कामना की है।

(२) मानवीय नियमों से अथवा मानव के लिये आवश्यकीय नियमों ये निर्विरोधता को ही सुख की संज्ञा से जाना जाता है।

(३) प्रत्येक कार्य में कर्त्ता, कार्य, कारण, फल और प्रभाव निहित हैं, क्योंकि कर्त्ता, के बिना कार्य, कार्य के बिना प्रभाव, प्रभाव के बिना फल, फल के बिना कारण, कारण के बिना आवश्यकता एवम् आवश्यकता के बिना कार्य नहीं है।

(४) पूर्ति व कर्तव्य के आशय भेद से कर्त्ता, ह्रास व विकास के मार्ग-भेद से कार्य, स्फुरण व प्रेरणा के भेद से कारण, सम-विषय, मध्यस्थ भेद से प्रभाव, न्यून व पूर्ण भेद से फल है।

(५) मानव कर्त्तव्य-बुद्धि को अपनाये बिना विकास, विकास के बिना समत्व, समत्व के बिना पूर्ण फल, पूर्ण फल के बिना स्फुरण, स्फुरण के बिना कर्त्तव्य बुद्धि प्राप्त नहीं होती है।

(६) मानव, मानव की आवश्यकीय कर्तव्यवादी बुद्धि से ही सफल एवं सुखी होता है।

(७) जो जिस कार्य में व्यस्त है, वह कर्त्ता की संज्ञा पाता है।

(८) चेष्टा को कार्य-चेष्टा में प्रवृत्त करने हेतु प्राप्त पृष्ठभूमि को कारण, वातावरण, अध्ययन व पूर्ण संस्कार को प्रभाव तथा उसके परिणाम को फल की संज्ञा दी जाती है।

व्यव: शरभेद में सत्य बोध

(१) व्यवहार में लौकिक एवम् पारलौकिक दो भेद हैं।

(२) ईषणात्रय विषय चतुष्टय लक्षित व्यवहार की लौकिक, आत्म-लक्षित की पारलौकिक संज्ञा है।

(३) पुत्र-वित्त लोक के भेद से ईषणायें हैं एवं आहार, निद्रा, भय, मैथुन के भेद से विषय हैं।

(४) परिवार बल तथा जन-बल को पुत्रेषणा, धन बल कामना को अथवा संग्रह कामना को वित्तैषणा, पद सहित यश-बल कामना को लोकैषण की संज्ञा दी जाती है।

(५) लक्ष्य-भेद से प्रयास, प्रयास-भेद से प्रगति, प्रगति-भेद से फल, फल-भेद से प्रभाव, प्रभाव-भेद से अनुभव, अनुभव-भेद से प्रतिभाव, प्रतिभाव-भेद से स्वभाव, स्वभाव-भेद से आसक्ति, आसक्ति-भेद से भाव, भाव-भेद से ही लक्ष्य भेद है।

(६) आवश्यकता के लक्ष्य में यत्नपूर्वक किये गये कार्य को प्रयास, पूर्व से भिन्न क्रय गति को प्रगति, जिस अवधि के अन्तर जिसकी क्रिया-प्रणाली बदलती है, उस अवधि को फल, बदलने के लिये जो विवशता है, उसका प्रभाव, जिसके आश्रित जो प्रभाव हो वह उसका अनुभव, जिस अनुभव के अनन्तर जो पुनः प्रयासोदय है उसको प्रतिभाव, प्रतिभाव से युक्त स्वमूल्यता को स्वभाव, स्वमूल्यानुक्रम से परमूल्यन-क्रिया को आसक्ति, मौलिकता को भाव की संज्ञा दी जाती है।

(७) लोक व लोकेश के भेद लक्ष्य; अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग भेद से यत्न, व्याप्टि व समष्टि-भेद से प्रयास, ह्रास व विकास भेद से प्रगति, न्यून व पूर्ण भेद से फल, सम-विषम-मध्यस्थ भेद से प्रभाव, इन्द्रिय व इन्द्रियातीत भेद से अनुभव, सहज व असहज भेद से प्रतिभाव, विहित व अविहित भेद से आसक्ति, उच्च व नीच भेद से भाव की स्थिति है।

(८) परिणामवादी लक्ष्य को लोक, उससे मुक्त को लोकेश, मन-वृत्ति-चित्त बुद्धि द्वारा किये गये यत्न को अन्तरङ्ग, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धेन्द्रियों द्वारा किये गये कार्य को बहिरङ्ग, इकाईत्व को व्यष्टि, सम्पूर्ण को समष्टि, अवनति की ओर को ह्रास, उन्नति की ओर को विकास, जिस प्राप्ति में अपूर्णता हो वह न्यून फल, उससे मुक्त को पूर्ण फल, प्रसववादी प्रभाव को सम, विभववादी प्रभाव को मध्यस्थ, प्रलयवादी प्रभाव को विषम; व्यवहार-मात्र के अनुभव को इन्द्रियानुभव, उससे मुक्त को अतीन्द्रिय अनुभव, यथार्थता की ओर जो प्रेरणा है उसको सहज प्रतिभाव, उसके 'विपरीत' असहज प्रति-भाव, समाधानवादी भाव को उच्च भाव, उससे विपरीत को नीच भाव, न्याय में जो आसक्ति है: उसको विहित आसक्ति, उसके 'विपरीत' को अविहित आसक्ति की संज्ञा दी जाती है।

(९) मन, वृत्ति, चित्त एवम् बुद्धि के कार्य को क्रमशः मनन (चयन) तुलन, चित्रण एवम् बोध (ज्ञान) को संज्ञा से जाना जाता है।

(१०) स्फुरण एवम् प्रेरणा भेद से मनन, सन्तुलन एवम् क्रान्ति के भेद

से तुलन, अर्थ एवम् आरोप के भेद से चित्रण, सत्य एवम् असत्य के भेद से बोधकार्य है।

११—सन्तुलनपूर्वक प्राप्त संवेगों को स्फुरण और उससे विपरीत को क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

१२—सुअर्थपूर्वक किये गये तुलन कार्य को सन्तुलन इसके विपरीत को क्रान्ति की संज्ञा दी जाती है।

१३—सत्यपूर्वक किये गये दर्शन को सुअर्थ और उससे विपरीत को आरोप की संज्ञा दी जाती है।

१४—स्वस्वरूप के साक्षीत्व में किये गये बोध को सत्य-बोध और उसके विपरीत में किये गये बोध को असत्य-बोध की संज्ञा दी जाती है।

कर्तव्य-बोध

१५—कर्तव्य की ओर अग्रेषित संवेग को स्फुरणात्मक एवम् विवशता-पूर्वक प्राप्त बौद्धिक एवम् शारीरिक चेष्टाओं को प्रेरणा की संज्ञा से जाना जाता है।

१६—समस्या रहित अथवा समस्या में समाधान का अनुभव करने को सन्तुलन, समस्या सहित को क्रान्ति व असन्तुलन के नाम से जाना जाता है।

१७—सर्वांगीण दर्शन को ही यथार्थ की सज्ञा दी जाती है और उसके विपरीत की संज्ञा 'आरोप' है।

१८—अपरिणामवादी सत्ता की पहिचान के साथ-साथ की गई जान-कारी को सत्य-बोध और उसके 'विपरीत' को असत्य-बोध की संज्ञा दी जाती है।

१९—संवेग वह है जो क्रिया के रूप में अवतरित होता है।

२०—कर्त्तव्य एवम् आवश्यकताओं की पूर्ति के लक्ष्य भेद से संवेगों का प्रसव है।

२१—कर्त्तव्य की पूर्ति है किन्तु आवश्यकता की पूर्ति नहीं है। क्योंकि कर्त्तव्य निश्चित एवं सीमित है जबकि आवश्यकता अनिश्चित और असीमित है। इसलिये कर्त्तव्यवादी प्रगति शान्ति की ओर, आवश्यकता की पूर्तिवादी प्रगति अशान्ति की ओर उन्मुख है।

२२—संवेगों से ही चयन क्रिया है, जो संग्रहवादी चयन, दोहदवादी (परिपोषक) चयन, त्यागवादी चयन एवम् शोषणवादी चयन के भेद से मन की चयन क्रियायें हैं।

२३—प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्या-सत्य के भेद से ही तुलना एवम् निर्णय है, जिसके आश्रय भेद से ही समस्या एवम् समाधान का प्रसव है, जो वृत्ति की क्रिया है।

असीम एवं समीम (पदार्थ तथा साम्यशक्ति)

२४—पद एवम् पदातीत के भेद से अर्थ है, पद की व्यवस्था रूप शब्द गुण की अवस्था एवं अनुपात के भेद से सिद्ध है। इसीलिये पद अनेक, और पदातीत एक है।

२५—जो किसी पद में नहीं हो या सीमित न हो, जिसमें ही सभी पद निहित हों या जिसमें उनका समावेश हो, उसे 'पदातीत' की संज्ञा दी जाती है।

२६—आकार, आयतन, घन के भेद से रूप की नाद-गति, परिभाषा के भेद से शब्द की तथा उद्भव, विभव, प्रलय के भेद से गुण की अवस्था एवं अनुपात है।

२७—सर्वत्र-प्राप्त साम्यसत्ता 'शक्ति' की जानकारी पदातीत अर्थ की संज्ञा है, क्योंकि उनके अस्तित्व का अनुभव है, जिनकी उत्पत्ति व अनुपात का कारण या निर्णय वर्तमान समय तक प्राप्त नहीं है।

२८—सर्वत्र एक ही प्रकार से स्थिति होने के कारण से ही व्यापक संज्ञा दी जाती है, इसीलिये पदातीत एक और पद अनेक हैं।

२९—अवस्था की पद संज्ञा है। पद भेद से अर्थ-भेद, अर्थ-भेद से व्यवहार-भेद, व्यवहार-भेद से प्रतिक्रिया-भेद, प्रतिक्रिया-भेद से परिणाम-भेद और परिणाम-भेद से ही पद-भेद है।

३०—छः ओर से सीमित को इकाई, वैसे अनेकों को अथवा अनेक समूहों को अनेक, असीम स्थिति अर्थ की व्यापक संज्ञा है। व्यापक निरन्तर मानव के द्वारा आनन्द के अर्थ में अभिव्यक्ति है, असीमित अर्थ मात्र सुख और दुःख के रूप में मानव के मन, वृत्ति, चित्त के द्वारा अनुभव किया जाता है।

३१—नित्य को सत्य समझने वाले एवम् जो जैसा है, उसको वैसा ही समझने वाली जानकारी को सत्य-बोध, अनित्य को नित्य समझने वाली एवम् जो जैसा है नहीं, उसको अपने विचार के अनुसार वैसा समझने वाली जान-कारी को असत्य-बोध की संज्ञा है।

३२—इच्छानुसार द्रवित होने वाले, चेष्टा करने वाले, अङ्ग-प्रत्यङ्गों को इन्द्रिय संज्ञा है।

३३—परिणामवादी फल की ओर की गई चेष्टा या प्रयास को अपूर्ण प्रयास एवम् अपरिणामवादी की ओर किये गये प्रयास को पूर्ण प्रयास की संज्ञा है।

३४—नित्य सत्ता के बोध के बिना सत्य, सत्य-स्पर्श के बिना सन्तुलन, सन्तुलन के बिना स्फुरण, स्फुरण के बिना विकास, विकासवादी चयन के बिना समाधान, समाधान के बिना व्यवहार शुद्धि, व्यवहार-शुद्धि के बिना

सह-अस्तित्व, सह-अस्तित्व के बिना स्वर्गीयता, स्वर्गीयता के बिना निर्विरोध, निर्विरोध के बिना नित्य बोध एवम् नित्य बोध के बिना सत्य-स्पर्श नहीं है।

शीर्षक–मानव का लक्ष्य एवं उपलब्धियाँ

३५—आवश्यकता-भेद से मानव जीवन का ही लक्ष्य है, जिसमें पार-लौकिक लक्ष्य सफल होता है, वह विशुद्ध मानव-जीवन है।

दर्शन

(१) दर्शन-भेद से लक्ष्य-भेद है।

(२) वातावरण, अध्ययन, पूर्व-संस्कारानुबन्ध क्रम-भेद से दर्शन, आसक्ति, विकास एवम् ह्रास हैं।

(३) दृष्टि के द्वारा प्राप्त समझ की दर्शन संज्ञा है।
(४) प्राकृतिक व मानव-कृत भेद से वातावरण है।
(५) शास्त्र व काव्य के भेद से अध्ययन है।
(६) विकृति व सुकृति के परिणाम भेद से पूर्व-संस्कार है।

(७) विकृति-पर्यन्त की प्रकृति संज्ञा है। या इसके पहिले ही जिसका निर्माण हो चुका ही, वह प्रकृति है। मनाकार को साकार करने वाले मनः स्वस्थता आशावादी की 'मानव' संज्ञा है।

(८) यथार्थ दर्शनोपयोगी शब्दों का शास्त्र संज्ञा है।

(९) इकाई की कल्पना को दूसरों तक प्रसारित करने हेतु प्रयुक्त शब्द-व्यूह की संज्ञा 'काव्य' है।

(१०) निषेध में जो आसक्ति है, उसकी संज्ञा 'विकृत संस्कार' है और विधि के प्रति आसक्ति की संज्ञा 'सुकृत परिपाक' है अथवा 'संस्कार' है।

(११) स्थूल व सूक्ष्म-भेद से विकृति, विज्ञान एवं विवेक के आश्रय भेद से विकास और विवेक और विज्ञान एवम् विवेक के विकास मात्र से ही मानव का मनाकार साकार है।

(१२) आसक्ति व अनासक्ति भेद से मनः स्वस्थता की आशायें हैं। स्वर्ग व मोक्ष के लक्ष्य-भेद से यथार्थ दर्शन स्वकृत अनुकृति भेद से काव्य, मानव को जिस काव्य-शास्त्र विचार से क्लेशोदय हो, वह निषेध, जिसमें सुखोदय हो, वह 'विधि' है।

(१३) प्राकृतिक एवम् कृत्रिम वातावरण मानव के अनुकूल व प्रतिकूल भेद से, मानवीय आशायें शत्रु व मित्र के निश्चय भेद से, शास्त्र प्रवृत्ति व निवृत्ति की निर्णय भेद से, काव्य युक्ति व निवृत्ति भेद से, पूर्व संस्कार उच्च-नीचात्मक अभिलाषा 'प्रेरणा' भेद से है।

(१४) विहिताविहित भेद से आवश्यकतायें हैं, जिनकी विवेचना का अवकाश केवल मानव में ही है।

(१५) लोकासक्ति से विषय-सुख तथा आत्मासक्ति से सहज सुख है।
(१६) लोक परिणामवादी है, इसीलिये उसका सुख भी क्षणवादी है।
(१७) आत्मा पूर्ण एवं अपरिणामी है। इसीलिए वह सुख शाश्वत है।
(१८) इच्छा + धन क्रिया बराबर में लोक तथा इच्छा ऋण क्रिया बराबर में लोकेश है।

(१९) सम्पूर्ण इच्छाओं व क्रियाओं का संघर्ष ही लोक है, क्योंकि इच्छा की पूर्त्ति के लिये क्रिया, प्रक्रिया की पूर्ति के लिये इच्छा सतत व्यस्त है, जिसकी पूर्ति नहीं है, उसी की लोक संज्ञा है।

(२०) जिसकी पूर्ति नहीं है या जो पूर्ण नहीं है, उसकी पूर्ति व पूर्णता से जो आसक्ति है, उसको 'मृगतृष्णा' अथवा 'भ्रान्ति' की संज्ञा दी जाती है।

(२१) यथार्थ-दर्शन से ही 'मृगतृष्णा' का दर्शन है।

२२—जो जैसा है, वह उसकी यथार्थता है। उसको वैसा ही समझना यथार्थ दर्शन है।

२३—लोक-तृष्णा से त्रस्त, व्यस्त समस्त प्रयत्नों में मानव मात्र ने श्रम का अनुभव किया है। इसीलिये उसने भ्रामकता से मुक्त होने का यत्न भी किया है, जो क्षमता, पात्रता, योग्यता भेद से सफल व असफल हर मानव में अनुभव रूप में है।

२४—मानव ने लौकिक व पारलौकिक भेद से व्यवहार किया है। लौकिक व्यवहार स्वार्थ-परार्थ भेद से है तथा अलौकिक व्यवहार के सबीज एवम् निर्बीज विचार दो भेद हैं।

२५—स्वार्थ व्यवहार नैतिक व अनैतिक भेद से, परार्थ व्यवहार, स्वजन, वर्ग, जाति, मत, सम्प्रदाय, पक्ष, देश तथा भाषा भेद से है और सब जन वर्ग जाति मत सम्प्रदाय पक्ष देश भाषा के भेद से है।

२६—सुनियमपूर्वक आसक्ति सहित किये गये व्यवहार को नैतिक स्वार्थ, और उनसे अन्यथा या विपरीति को 'अनैतिक स्वार्थ, संज्ञा है।

२७—स्वजीवन को अधिक महत्वपूर्ण और अन्य को अल्पमहत्व का समझने वाली प्रवृत्ति को स्वार्थ संज्ञा है। इसी प्रकार अन्य में अधिक महत्व अथवा महता का अनुभव करने वाली प्रवृत्ति को परार्थ संज्ञा है।

२८—व्यष्टि अस्तित्व व अंकुर युक्त श्रेयवादी स्थिर निश्चय को सबीज विचार, उससे मुक्त समष्टि अस्तित्व सहित को, 'निर्बीज विचार' की संज्ञा है।

२९—व्यष्टित्वाभिमान से संकीर्ण विचार का, समष्टित्व के ज्ञान से व्यापकता का और कृतज्ञता से निःसीम परार्थ विचार का कृतघ्नता से स्वार्थ विचार का प्रसव है। इसीलिये यथार्थ दर्शन के बिना यथार्थ कर्म में प्रवृत्ति यथार्थ कर्म के बिना निर्दोष व्यवहार, निर्दोष व्यवहार के बिना जीवन-सफलता जीवन-सफलता के बिना सहअस्तित्व, सहअस्तित्व के बिना विवेक और विज्ञान विवेक और विज्ञान के बिना यथार्थदर्शन नहीं है।

१—इष्ट लक्ष्य से सबीज विचार एवम् समष्टि लक्ष्य से निर्बीजन सिद्धियां हैं।

२—इष्ट अनेक व समष्टि एक है। इसीलिये इष्ट विचार अनेक होने का और समष्टि एक होने का प्रावधान है।

३—इष्ट सेवन कार्य, तादात्म्य, तद्रूप, तत्सन्निधि, तदावलोकन के लक्ष्यभेद से है। वह उसके नाम, रूप, गुण तत्व की उपासना के अनुसार ही सफल है।

जीवन मुक्त का स्वभाव (निराकर्षण)

४—निर्बीजन व्यवहार अनासक्त रूप में स्थित है। यही जीवन्मुक्त का स्वभाव है।

५—क्रिया और इच्छा में जो अनासक्ति है, उसे 'जीवन्मुक्ति' की संज्ञा प्राप्त है।

६—जीवनमुक्त को भूतकाल के स्मरण से, भविष्यत्काल की आशा से पीड़ा एवम् वर्तमान की कृपा से विरोध नहीं है।

७—आकृति के रूप, संज्ञा, प्रभाव को गुण तथा यथार्थता को तत्व संज्ञा है।

८—किसी एक रूप का निर्देश करने वाले शब्द को 'नाम' की संज्ञा से जाना जाता है।

९—रूप व गुण परिवर्तनवादी है जब कि तत्व शाश्वतवादी है। जो नाशवादी क्रिया से मुक्त हों, उन्हें 'तत्व' की संज्ञा से जाना जाता है।

१०—रूप व गुण सापेक्ष हैं, केवल तत्व मात्र ही निरपेक्ष से सङ्ग में रत है।

११—बिना दूसरी इकाई के जिसका अस्तित्व न हो, उसको 'सापेक्ष' संज्ञा दी जाती है।

१२—इकाई के उत्तरोत्तर स्टानवर्ती धर्म व विभूति को एकत्रित करने के प्रयास से सबीज विचार एवं समस्टानवर्ती विचार क्रम पद्धति से निर्बीज विचार सफल है।

१३—असंग्रह से निर्बीजन प्रवृत्ति का प्रसव है।

१४—अकर्तित्व व अकर्मण्यत्व के निश्चय भेद से असंग्रहता है।

१५—निराकर्षण से अकर्तृत्व, अचेष्टा से अकर्मण्यता सफल है।

१६—चेष्टा से मुक्ति पाने वाला अधिकार किसी इकाई में अथवा किसी इकाई के द्वारा सिद्ध नहीं है। इसीलिये अकर्मण्यत्व आलस्य प्रभावात्मक दोष के रूप में सिद्ध होता है।

१७—ऐच्छिक एवम् सामूहिक भेद से निराकर्षण है।

१८—अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग सम्पूर्ण क्रियाओं के आकर्षण से मुक्त होने का जो अधिकार है, वह अकर्तृत्व के नाम से या संज्ञा से जाना जाता है।

१९—व्यवहार-काल में चेष्टा से मुक्ति नहीं है। इसीलिये अकर्मण्यत्व मात्र समाधि की स्थिति में सिद्ध है, जिसको अचेष्टा की भी संज्ञा दी जाती है।

२०—इकाई ऋण कार्य बराबर में अकर्तव्य, इकाई ऋण आसक्ति बराबर में अकर्तृत्व है।

२१—किसी एक अवधि से निराकर्षण और इष्ट दिशा में आकर्षण हो, उसको ऐच्छिक निराकर्षण संज्ञा दी जाती है, वह समग्र से हो तो उसे पूर्ण निराकर्षण की संज्ञा दी जाती है।

२२—निराकर्षण से ही अनासक्ति, अनासक्ति से ही अकर्तृत्व, अकर्तृत्व

से ही असंचय, असंचय से ही अभय, अभय से ही स्वर्गीयना, स्वर्गीयता से ही निराभिमान, निराभिमान से ही परवैरागी से ही योग, योग से ही जीवन-मुक्ति, जीवनमुक्ति से ही निराकर्षण है।

लौकिक सुख एवं दुःख—आसक्ति एवं निरासक्ति

१—आसक्ति ही सम्पूर्ण प्रकार के योग व वियोग का कारण है।

२—गुरु आदि के प्रति आसक्ति से योग, उसी समय उससे लघु आदि के प्रति आसक्ति से वियोग है।

३—एकत्व व निकटत्व के भेद से योग है।

४—सजातीत्व का ऐक्यत्व व विजातीत्व का निकटत्व है।

५—विकासवादी योग को सुयोग और उसके अन्यथा विपरीत को 'कुयोग' की संज्ञा है।

६—अनासक्त कर्तव्यनिष्ठा से पूर्ण विकास, न्यायासक्ति निष्ठा से विकास की ओर तथा अन्यायासक्ति कार्यप्रणाली से ह्रास है।

७—मानव के लिये आवश्यकीय नियमों को अपनाने पर न्यायासक्ति और अनावश्यकीय नियमों को अपनाने पर अन्यायासक्ति संज्ञा है।

८—आसक्ति भेद से ही स्वर्गत्व व नर्कत्व का प्रसव है।

९—असंग्रह, स्नेह, विद्या, निरभिमान, अभय व तप से युक्त आचरण से प्राप्त अनुभूतियों को स्वर्गीय अनुभव की संज्ञा दी जाती है।

१०—संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान, भय व अतप से युक्त आचरण से प्राप्त अनुभव परम्परा की नरक संज्ञा है।

प्राकृतिक--नियम

११—नियमानुक्रम. व्यक्तिक्रम भेद से ही मानव ने सुखानुभव व दुःखानुभव किया है।

१२—समस्त वस्तु, विषय, रूप, आशय के पोषक व शोषक भेद से वह मनुष्य के लिये आवश्यकीय व अनावश्यकीय भेद से सपूर्ण कार्य शास्त्र व विचार मात्र विभक्त है। उसमें से पोषक वर्ग के नियम व शोषक वर्ग की निरोध संज्ञा है। उसी की विधि का आश्रय लेकर मनुष्य अपने जीवन को सफल या असफल बनाता है।

१३—नियम ही न्याय, न्याय ही धर्म, धर्म ही सत्य, सत्य ही ईश्वर, ईश्वर ही आनन्द, आनन्द ही जीवन, जीवन ही नियम है।

१४—समाज के स्तर में सार्वभौमिक सिद्धान्तानुक्रम से निर्णीत निश्चय की 'नियम' संज्ञा है।

१५—नियम को शासन के स्तर पर कार्यान्वित करते समय उसे न्याय की संज्ञा से जाना जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्म की सज्ञा से, ब्रह्माण्डीय स्तर पर सत्य की संज्ञा से, अनन्त ब्रह्माण्डीय स्तर पर ईश्वर संज्ञा से, अनुभव स्थिति में 'काल में' आनन्द संज्ञा से, आचरण की स्थिति पर जीवन की संज्ञा से जाना जाता है।

१६—सुख-शान्ति, सन्तोष व आनन्द यह सुख की अवस्था भेद से संज्ञा भेद है। उसके पोषक वर्ग की नियम संज्ञा है, क्योंकि सम्पूर्ण मानव सुखानुभव करने की कामना, उत्सुकता व प्रयास में ही है।

१७—विधि को न्याय, श्रेयवादी स्वभाव को धर्म यथार्थ को सत्य, व्यापकता को ईश्वर, पूर्ण समाधान को आनन्द आचरण को जीवन, प्राकृतिक कृति की नियम संज्ञा है।

१८—लोकेश दर्शन या ज्ञान कोष से लोक दर्शक ज्ञान की प्रेम संज्ञा है।

१९—असीम साम्योपस्थिति की व्यापक संज्ञा है। संशय व विषय

से मुक्ति पाने से जो बौद्धिक स्थिति है, उसका पूर्ण समाधान अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग कृत प्रयास के आचरण सार्वभौमिक निर्णय से अविरोधता की 'नियम' संज्ञा है।

२०—अनिश्चयता की संशय संज्ञा तथा अयथार्थता की विपर्या संज्ञा है।

२१—जो जैसा नहीं है, उसको वास्तविक रूप में समझाने की जो कमी है, उसे संशय की संज्ञा से भी जाना जाता है।

अवलोकन (निरीक्षण)

१—अवलोकन भेद से लक्षण लोक व लक्ष्य है।

२—लक्ष्य भेद से ही आचरण भेद है।

३—परस्पर एवम् स्वपर परिस्थिति की बाध्यता भेद से ही लक्ष्य-निर्णय है।

४—स्वकृति-निर्णय पूर्ण व अपूर्ण को दिशा भेद में है।

५—यथार्थता की ओर पूर्णत्व और भ्रामकता की ओर अपूर्णत्व संज्ञा है।

६—परकृतिनिर्णय कुटुम्ब समाज राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र स्तर-भेद से है। वह व्यापक व सङ्कीर्ण मार्ग-भेद से और न्याय व अन्याय के आश्रय भेद से है।

७—प्रतिक्रिया परिपाकन्याय से ही घटनाक्रम है।

८—सुकर्म व दुष्कर्म के आश्रय भेद से ही वैयक्तिक जीवन है और घटनायें हैं।

९—सच्चरित्र व दुश्चरित्र के आचरण भेद से कुटुम्ब है। उसके अनुरूप में उसकी घटनायें है।

१०—सिद्धान्त व मत के विचार व प्रचार भेद से समाजीवन है। उसी के प्रतिरूप में उसकी घटनायें हैं।

११—विधि व अवसरवादी नीतिभेद से राष्ट्रीय जीवन है, उसी के अनुसार उसकी घटनायें हैं।

१२ – विवेक व अविवेक, विज्ञान व सामान्य ज्ञान के भेद से अन्तर्राष्ट्रीय जीवन है, उसी के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में घटनायें स्थित हैं।

१३—नियमपूर्वक न्याय सहित उन्नति के लिये किये गए कार्य मात्र को सुकर्म, और उससे अन्यथा या विपरीति को दुष्कर्म की संज्ञा है।

१४—नियमपूर्ण समाधानात्मक आचरण-चित्र को सच्चरित्र और उससे अन्यथाअर्थात् विपरीत को दुश्चरित्र संज्ञा है।

१५—विकासवादी कारण, प्रयोजनपूर्ण परीक्षण व निरीक्षण के द्वारा सिद्ध होने वाले निर्णय को सिद्धान्त और उससे अन्यथा या विपरीत को 'मत' संज्ञा है।

१६—नियमसहित निश्चित की गई कार्यप्रणाली को न्याय और उससे अन्यथा या विपरीत को 'अवसर' की संज्ञा है।

१७—समाधान व समृद्धि की ओर किये गये प्रशस्त प्रयास को विवेक व विज्ञान और उससे अन्यथा या विपरीत को अविवेक व सामान्य ज्ञान की संज्ञा दी जाती है।

१८ – अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग भेद से सुगमता व दुर्गमतायें हैं।

१९—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के भेद से समाधान-चित्रण है। उसके सन्तुलनात्मक आचरण में सफलता और उससे अन्यथा आचरण में असफलता है।

२०—संग्रह व उपयोग के आश्रय-भेद से अर्थ का, अस्तित्वपुष्टि, आशा व सुख-भेद से धर्म का स्थूल सूक्ष्म भेद से काम 'भोग' का गुण व निर्गुण भेद से मोक्ष का समाधान व प्रतीक्षा मानव ने की है।

२१—संग्रह कामना में समाधान नहीं है, क्योंकि संग्रह की पूर्ति नहीं है।

२२—सामान्य व विशेष उत्पादन में व भोग में अर्थ का व्यय है।

२३—आहार, आवास एवम् अलङ्कार के भेद से सामान्यतम वस्तुओं का उत्पादन, दूर-गमन, दूर-श्रवण, दूर-दर्शन के साधनोपयोगी वस्तुओं के भेद से विशेषतम साधनों का उत्पादन है।

२३—(अ) स्थायी, निश्चय व अवसरवाद भेद से प्रेरणायें हैं। वह एक देश, भाषा, वर्ग, मत, सम्प्रदाय पक्ष जातिवाद से सीमित होने पर अवसरवाद और असीमित होने पर और न्यायसम्मत होने पर निश्चयवाद को संज्ञा से जाना जाता है।

२४—न्यायान्याय के आश्रय-भेद से या नीति-भेद से मानव ने दूसरों पर नियन्त्रण पाने का प्रयास किया है, जो देश, भाषा, वर्ग, जाति, बल व्यापित या सीमित है। जिस कारण राष्ट्र-विचार में अनेकत्व का स्थान निहित है।

२५—न्यायाश्रित विधि-विधान एवम् नीति से प्रतिहिंसा एवम् उच्छृङ्खलता की ओर प्रगति है।

२६—न्याय से अन्याय को, अन्याय से न्याय को शासन करने के लक्ष्य भेद से मानवकृत विधि-विधान व नीतियाँ हैं, इसी आधार पर राष्ट्रीय जीवन या सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन सफल या असफल होते हैं।

२७—दर्शन पूर्ण या अपूर्ण भेद से है, जिसका व्यवसाय लोक-व्याप्त या मानव सम्पर्क व्याप्त भेद से है।

२८—रहस्य युक्त दर्शन की 'अपूर्ण' और रहस्यमुक्त दर्शन की 'पूर्ण' संज्ञा है।

२९—अध्यात्म-विज्ञान, मनो-विज्ञान व पदार्थ-विज्ञान की एकसूत्रता से ही रहस्यता का निवारण है।

३०—लोक के प्रति अनासक्ति द्वारा ही साम्य-अस्तित्व-दर्शन

सम्भव है, जिससे आत्म-समाधान का अनुभव और व्यवहार में सन्तुलन का अनुभव है।

३१—सापेक्ष शक्ति का न्यायानुक्रम से मनोविज्ञान का दर्शन है, जिसके यथार्थ ज्ञान की ज्ञाता में सह-अस्तित्व स्वभाव-सिद्ध है।

३२—क्रिया फलानुक्रम अन्याय दर्शन से 'सापेक्षता' से पदार्थ विज्ञान का पूर्ण दर्शन है, जिससे मानव अपने आवश्यकीय सम्पूर्ण समृद्धियों को निर्माण एवम् प्राप्त कर लेता है और जिसमें ही या जिससे ही एक व अनेक का एकता से अनेकता का और अनेकता से एकता का दर्शन किया है।

३३—परस्परानुशासनानुवित लोक-व्यूह की ब्रह्मांड संज्ञा है।

३४—गणितानुक्रम न्याय से क्रिया व फल का निर्णय, गुणानुक्रम न्याय से ह्रास व विकास का निश्चय, कारणानुक्रम-न्याय से निरपेक्ष व सापेक्ष सत्ता का दर्शन है, जिसको क्रमशः आधिदैविक, आध्यात्मिक विज्ञान की संज्ञा भी है।

३५—निरपेक्षता के बिना व्यापकत्व नहीं है, क्योंकि सापेक्ष मात्र ससीम ही है।

३६—व्यापकता के बिना पूर्ण शक्ति, पूर्ण शक्ति के बिना पूर्ण शक्त, पूर्ण शक्त के बिना पूर्णता, पूर्णता के बिना अनेकता, अनेकता के बिना सम्पूर्ण, सम्पूर्ण के बिना सापेक्षता, सापेक्षता के बिना गुण, गुण के बिना परिवर्तन, परिवर्तन के बिना सङ्गठन, सङ्गठन के बिना विघटन, विघटन के बिना सूक्ष्मता, सूक्ष्मता के बिना पूर्णता, पूर्णता के बिना व्यापकता का दर्शन नहीं है।

३७—जिस महावकाश में अनन्त ब्रह्मांड समाया है, उन असीमावकाश में जिसकी उपस्थिति साम्यतः पाई जाती है, जिनका स्पर्श सबको अनवरत समानतः प्राप्त है, उसकी व्यापक संज्ञा है।

३८—सभी अणु अपनी दशा में सचेष्ट हैं। इसीलिए सबको अणविक स्थिति में ही उस साम्यसत्ता का स्पर्श प्राप्त है व अनुभव है, अस्तु उसी सत्ता की 'शक्ति' संज्ञा भी है।

३९—शक्ति के बिना शक्त, शक्त के बिना शक्ति-दर्शन नहीं है, क्योंकि शक्ति का अनुभव प्रादुर्भाव व स्थिति माध्यम से ही है।

शक्तीव शक्त

(१) शक्त में ही अनेकतावकाश है।

(२) शक्त के बिना अनेकता, अनेकत्व के बिना सापेक्षता, सापेक्षता के बिना स्फुरण, स्फुरण के बिना क्रिया, क्रिया के बिना परिणाम, परिणाम के बिना फल, फल के बिना प्रगति, प्रगति के बिना विवेक, विवेक के बिना विज्ञान, विज्ञान के बिना दर्शन, दर्शन के बिना यथार्थता, यथार्थता के बिना तटस्थता, तटस्थता के बिना समाधान, समाधान के बिना पूर्ण शक्त नहीं है।

(३) सम्पूर्ण ज्ञान व शक्ति का ही नाम धर्म है, क्योंकि ज्ञान इकाई नहीं है, वह अपनी व्यापकता से निर्णीत होता है और शक्त को (इकाई) उसका स्पर्शाधिकार निरन्तर प्राप्त है। इसीलिये वे इकाई अर्थात् स्वस्वरूप 'मध्य परमाणु' और द्रष्टा के पद में हैं और नित्य शान्त हैं।

(४) शक्त पूर्ण होने के कारण ही उसे सापेक्षता मात्र की अपूर्णता का दर्शन है। इसीलिये उसको निरन्तर निरपेक्षता का स्पर्शाधिकार प्राप्त है।

(५) रूप, बल, बुद्धि, पद, धन की विषमता से ही मानव में स्पर्द्धा, आवांक्षा, उत्साह एवम् हिंसा-प्रतिहिंसा एवम् आतङ्क का प्रभाव है।

(६) सह-अस्तित्व से ही स्नेह, स्नेह से ही विरोध-दमन, विरोध-दमन से ही विकास, विकास से ही यथार्थ जीवन, यथार्थ जीवन से ही स्वर्गीयता, स्वर्गीयता से ही व्यापक दर्शन, व्यापक दर्शन से ही कर्तव्यनिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा से ही सफलता, सफलता से ही विवेक व विज्ञान, विवेक व विज्ञान से ही सह-अस्तित्व है।

(७) सह-अस्तित्व से ही निर्विरोध व विरोध का दमन है।

(८) अगोपनीयता ही यथार्थ, उसको अपनाया हुआ ही यथार्थ जीवन की संज्ञा से जाना जाता है।

(९) गोपनीयता से सङ्कीर्णता की ओर और उसके विपरीत में व्यापकता की ओर प्रगति है।

(१०) गोपनीय जीवन से ही अभिमान का प्रभाव है, जिससे सम्पूर्ण प्रकार के विरोध, विद्रोह, आतङ्क जीवित हैं।

(११) समष्टि, बल, बुद्धि, रूप पद, धन से व्यष्टि अल्प है, क्योंकि समष्टि की आंशिकता की व्यष्टि संज्ञा है।

(१२) इकाईत्व अभिमान से ग्रस्त होने पर ही वंचना, परिवञ्चना, आतङ्क, विग्रहपूर्वक अनेकों का शोषण किया है और उस अभिमान से मुक्त होने पर ही विवेक, विज्ञान, स्नेह, सहजता और सह-अस्तित्व को पाकर व पालन करके अनेकों का पोषण भी किया है।

(१३) शोषणवादी प्रणाली से क्रान्ति का, पोषणवादी प्रणाली से शान्ति का अनुभव मानव ने किया है।

(१४) सर्व मानव के लिये अवकाश समान है, जिसका सदुपयोग व दुरुपयोग उसके लिये प्रयुक्त प्रयोग-उपयोग एवम् व्यवस्था से ही मानव अपने में अधिकार क्षमता, योग्यता व व्यक्तित्व को प्राप्त कर सका है।

(१५) अधिकार भेद से ही मानव उच्च व नीचता के पद प्राप्त करता है।

लाभ की कामना

१—मानव लाभ द्वारा सुख का अनुभव करने की कामना करता है।

२—भाव भेद से लाभ भेद, लाभ भेद से उपयोग भेद, उपयोग भेद से अधिकार भेद, अधिकार भेद से ही व्यवस्था भेद और व्यवस्था भेद से ही भाव भेद है।

३—शोषण क्रम का अवलम्ब लेने वाले एक से अनेक सुखी नहीं हैं।

४—शोषक को शुष्क होना अनिवार्य है, क्योंकि क्रिया से प्रतिक्रिया समान है।

५—जब कमाते हैं, तब गमाते नहीं और जब गमाते हैं, तब कमाते नहीं।

६—अपव्यय ही गँवाने की संज्ञा है और सद्व्यय ही कमाने की संज्ञा है। इसीलिए मानव सद्व्ययता के द्वारा ही सफल है।

७—मनुष्य, कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, लोक, ब्रह्माण्ड क्रमशः अनेक से अन्योन्याश्रित हैं। वह उसके आवश्यकीय नियम पालन से सफल और उसके विपरीत करने पर असफल है।

८—ऐसी कोई इकाई नहीं है, जो किसी के आश्रय में व किसी की आश्रित न हो। इसीलिए क्रिया-मात्र न अन्योन्याश्रित सिद्ध हैं।

९—अनन्योन्याश्रयता मानव के लिए एकसूत्रता से ही सफल जीवन प्राप्त है।

१०—सहअस्तित्व की निर्विरोधता को एक सूत्रता की संज्ञा है; इस प्रकार सहअस्तित्व ही मानव के लिये आवश्यकीय जीवन स्रोत है।

११—पराधिक उन्नति के लिये प्रयासात्मक एवम् परोन्नति में विरोधात्मक विचार एवम् कार्य प्रणाली भेद से स्पर्धा है, जो हर्ष व अमर्ष की संज्ञा है।

१२—परस्पर शोषण विचार एवं प्रयास से युक्त होने पर असंतोष उससे मुक्त होने पर हर्षोदय है, जो एक से अनेक को ह्रास व विकास की ओर प्रगतित किया है।

१३—अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग नियम से ही मानव जीवन सफल है।

१४—संग्रह, द्वेष, अविद्या, अभिमान, और भय ये पाँच बौद्धिक मूल प्रवृत्तियाँ और उससे उत्पन्न सम्पूर्ण संवेग बौद्धिक अनियन्त्रिता की मूल कारण हैं, जिससे क्रमशः लोभ, विरोध, भ्रामकता, उद्दंडता एवम् आतङ्क के रूप में परिलक्षित है, या उत्पन्न होता है, जो बौद्धिक व लेश के रूप में मानव के द्वारा अनुभव में है, उक्त दोष-पूर्ण पाँच मूल प्रवृत्तियों के विपरीत में कर्तव्य-पूर्ण असंग्रह स्नेह, विद्या सरलता एवं विवेक है, जिससे क्रमशः उदारता, सहअस्तित्व (स्नेह) यथार्थता अनुशासन, एवम् निर्भयता का अनुभव मानव में है, जो स्वयं सिद्ध विकास है।

१५—असंग्रह आदि पाँच पोषक मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न सम्पूर्ण वेग, संवेग, विचार, सङ्कल्प, उत्साह, चेष्टा, क्रिया व क्रियाप्रणाली से एक व अनन्त मानव तक सफल है, अन्यथा यह असफल है।

१६—संग्रह विचार अपूर्ति से द्वेष विचार अपराध प्रतिकार एवम् असफलता से, अब अविद्या वादी विचार से संशय एवं विषयों से, अभिमान द्रोह व विद्रोह से, भय अविवेकात्मक विचार अवैज्ञानिकता नव अविवेक से मानव को त्रस्त किया है।

१७—संग्रह विषय चतुष्टय एवं ईषणात्रय पर्यन्त तक ही है। जो किसी इकाई के अधिकार के अन्तर्गत तीनों काल में नहीं है, इसीलिये वह निरन्तर द्रोह-विद्रोह से युक्त है और दुःख का स्रोत है।

१८—द्वेष, घृणात्मक एवं हिंसात्मक भेद से है।

१९—घृणात्मक द्वेष बौद्धिक तथा हिंसात्मक द्वेष भौतिक क्षेत्र में व्यक्त है।

२०—घृणात्मक द्वेष, स्वभाव, गुण व कर्म के भेद से है।

२१—हिंसात्मक कार्य—व्यक्ति, कुटुम्ब, वर्ग, जाति मत, भाषा, राष्ट्र के द्वन्द व प्रतिद्वन्दता के भेद से है।

२२—हिंसा की प्रतिहिंसा द्वन्द का प्रतिद्वन्द, अपराध का प्रतिकार, अनिवार्य है, अस्तु द्वेष किसी काल में मानव के लिये साधन सुख का साधन। सिद्ध नहीं है।

२३—अविद्या जैसा जिसका रूप, गुण, स्वभाव, व धर्म नहीं है, उसको स्वमनोनुकूल समर्थन करने व समझ ने के लिये प्रयास की 'अविद्या' संज्ञा है, जो मानव के लिये सफलात्मक साधन नहीं है।

२४—अभिमान—स्वबल, बुद्धि, रूप, पद, और धन, को श्रेष्ठ; अन्य को नेष्ट, समझने वाली प्रवृत्ति की 'अभिमान' संज्ञा है, जो मानव को अथवा मानव के लिये सफल बनाने का साधन नहीं है।

२५—भय—'प्राण,' 'पद,' 'मान' व 'धन' के आश्रय भेद से भय है।

२६—मृत्यु कल्पना को 'प्राण-भय, एक कुटुम्ब पतित्व से अनेक कुटुम्ब पतित्व तक को अथवा एक राष्ट्र से अनन्त राष्ट्र प्रतित्व तक को व उनके आश्रित के विरोध को 'पद-भय', यश के विरोध को मान भय, एवम् धन संग्रह के विरोध की 'धन-भय' संज्ञा है। पतित्व का पतन, मान का भङ्ग, प्राण का हरण, धन का व्यय, काल कर्म, गति क्रम से नियन्त्रित है ही। इस प्रकार से मानव के लिये जो उचित प्रकार का अर्थात् न्याय पूर्ण लाभ की कामना में अनुशासित होने पर ही सफल हो सकेंगे।

व्यवहार

(१) वहिरङ्ग व्यवहार के लिये साधन सांस्कृतिक व प्राकृतिक भेद से हैं ।

(२) रूप' वल, बुद्धि, पद, धन सांस्कृतिक व्यवहार के लिये साधन तथा प्राकृतिक व्यवहार के लिये खनिज व वनस्पति तथा ऋतुक्रम मात्र साधन हैं ।

(३) प्राकृतिक सन्तुलन उसके उत्पादन, अनुक्रम व अनुपात से सम्पन्न हैं, या स्थित हैं । उसका सदुपयोग व दुरुपयोग करने का या उसके साथ विधि व निषेधात्मक व्यवहार करने का उत्तरदायित्व केवल मानव में ही है । जिससे ऋतु संतुलन और असन्तुलन होता है ।

(४) परधन, परनारी, परपीड़ारत कार्य; शास्त्र विचार मात्र सांस्कृतिक जीवन को विक्षेपकारी कार्यप्रणालियाँ हैं, जिन पर आश्रित एक से अनन्त तक सुखी नहीं है ।

उन तीनों दोषों का निराकरण ही एक से अनन्त व्यक्ति, कुटुम्भ, समाज, राष्ट्र, व अन्तर्राष्ट्र के लिए सांस्कृतिक नियम है, जो स्वधन, स्वनारी, स्वयुस्थ, व दया से ही समाधानित है ।

(५) उचित रूप से किये गए कर्तव्य की फल राशि की स्वधन संज्ञा है ? अन्यथा जो प्रतिफल, परितोषिक व पुरुष्कार के भेद में उपलब्ध है, जो हीनता, दीनता एवम् क्रूरता से उपलब्ध किया जाता है ।

(६) व्यक्ति का कर्त्तव्य, कुटुम्भ, समाज, और शासन,दत्त भेद से है ।

(७) कुटुम्भ–दत्त कर्तव्य, प्राण, अर्थ चरित्र, के अनुक्रम न्याय से; समाज दत्त कर्तव्य अर्थ, चरित्र, शास्त्रसिद्धान्तानुक्रम न्याय से, शासन-दत्त कर्तव्य चरित्र सिद्धान्त अध्ययन क्रिया-वादी अधिकारानुक्रम न्याय से ही सफल है, अन्यथा में सब असफल हैं ।

(८) अन्तर्राष्ट्रीय समन्वय, केवल मानवोचित सार्वभौमिक न्यायपूर्ण चरित्र के आचरण से ही है । वह उपर्युक्त वर्णित सांस्कृतिक नियम-त्रय है ।

(९) सर्व-देश, काल, परिस्थिति मात्र में मानव को अपरिवर्तनीय सुख-आशा की पोषणवादी निर्णय-नीति की सार्वभौमिक विधान संज्ञा है ।

(१०) मानव मात्र में सुख की आशा अपरिवर्तनीय है । इसीलिये उसकी उपलब्धि में ही मानव के लिये विधि व निषेध का निर्णय है ।

(११) अर्थ, क्रिया, व शब्द के भेद से प्राप्त है, जिसका सदुपयोग एवम् सुरक्षा की नितान्त आवश्यकता है । उसमें से सुरक्षात्मक नीति को राज्य-नीति तथा सदुपयोगात्मक नीति को धर्म नीति कहा जाता है । क्योंकि मानव व्यवसाय से अर्थोपार्जन करता है । अर्थोपार्जन करने की ही प्रतिक्रिया है उसका सदुपयोग एवम् सुरक्षा चाहता है ।

(१२) विधि वर्ग वह है जो मानव को सुखानुभूति प्रदान कर सके । निषेध वह है जो दुःखानुभूति कराता है ।

(१३) सुख और दुःख दोनों व्यक्तिगत, कौटुम्बिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार नीति पर आधारित है ।

(१४) मानव को मानवीय एवम् पाशविक व्यवहार का अधिकार तथा अवसर है, क्योंकि वर्तमान तक सृष्टि में मानव-सृष्टि गुरुतम है, अन्य क्रम से लघु है । जैसा पदार्थ से प्राण (अन्य वनस्पति), प्राण से जीव (मनुष्येतर प्राणी), जीव से मानव, उक्त क्रम से अधिकाधिक मूल्य-सृष्टि में स्थित हैं ।

(१५) गुरु-मूल्य में लघु-मूल्य निहित रहता ही है इसलिये मानव ने जन्म लेने के पहले से ही सभी गलतियों को करने का (पाशविक व्यवहार करने का) अधिकार तथा जन्म के अनन्तर प्रयोग व अभ्यास से मानवीय व्यवहार (सही व्यवहार) करने का अवसर पाया है ।

(१६) मानव में व्यवहार-नीति सम्बन्ध के लिये छः दृष्टियाँ उपलब्ध है, वह प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभ, न्यायान्याय, धर्माधर्म, सत्यासत्य के भेद से उपलब्ध है ।

(१७) उक्त छः प्रकार की दृष्टियों में से प्रियाप्रिय, हिताहित, लाभालाभात्मक दृष्टियों का प्रयोग व उपयोग पशुजीवन में भी पाया जाता है। शेष तीन दृष्टियों को उनमें नहीं पाया जाता है, इसलिये निश्चित रूप से पहचाना जाता है और सिद्ध होता है कि मानवीय विधि वर्गीय व्यवहार नीति दृष्टि केवल न्यायान्याय, धर्माधर्म और सत्यासत्य ही है। साथ ही यही उक्त नीति-निर्णय की कसौटी भी है।

१८—मानव का विधि वर्गीय व्यवहार नीतियाँ असंग्रह, स्नेह, विद्या, सरलता व अभय के रूप में बौद्धिक क्षेत्र में; स्वधर्म, स्वनारी, स्वपुरुष, दया, धीरता, वीरता एवम् उदारता के रूप में सामूहिक क्षेत्र में; प्रकृति सिद्ध खनिज व वनस्पति का उपर्युक्त अनुपात से सदुपयोग तथा सहयोग करने के रूप में प्राकृतिक क्षेत्र में सदुपयोग करने का विशेष अवसर है।

१९—मानव को कर्म करते समय में स्वतन्त्र एवम् उसके फल भोगते समय में परतन्त्र नियतिक क्रम से अनुशासित कर दिया है। इसलिये मानव प्राप्त अवसर तथा अधिकार को सदुपयोग व दुरुपयोग करने में सक्षम है।

२०—नियम वह है, जिसका उल्लंघन न किया जाय। यदि उल्लंघन होता है तो वह नियम नहीं होता। नियम स्वयं जानकारी है। नियम ही ज्ञान है, ज्ञान ही ईश्वर है, ईश्वर ही समाधान है, समाधान ही आनन्द है, आनन्द ही जीवन है और जीवन ही मानव की चिरांशित उपलब्धि है, जो केवल सदुपयोगात्मक नीति व प्रणाली से सफल है। अन्यथा असफल है।

२१—मानव ने भौतिक समृद्धि व बौद्धिक समाधान के द्वारा सुखी होने का प्रयास किया है।

२२—भौतिक समृद्धियाँ, वैज्ञानिक नियमों तथा अभ्यास पर; बौद्धिक समाधान, विवेकात्मक नियम तथा मनन पर निर्भर है। इनकी उपलब्धि निरन्तर अभ्यास से ही है।

२३—न्यायपूर्ण अभ्यास की क्रमाभ्यास, विज्ञानानुक्रम प्रणाली की

विधि उसी को प्रयोग में लाते समय न्याय संज्ञा है। क्योंकि विद्या ही न्याय, न्याय ही विज्ञान, विज्ञान ही विधान सिद्ध होता है।

२४—स्वस्थ व्यवहार के लिए स्वस्थ शरीर का भी महत्व पूर्ण स्थान है जो प्राण के विधिवत नियंत्रण से ही उपलब्ध है।

२४—(अ) शब्द से प्राण-पोषण, व्यवसाय से अर्थ, समृद्धि, नियमाचरण से चरित्र को उपलब्धि, वैज्ञानिक न्याय दर्शन से सैद्धान्तिक जानकारी, कर्तव्य-निष्ठा से अधिकार का विकास है। और उससे ही मानव जीवन सफल होता है, अन्यथा वह असफल है।

२५—प्राण-वायु विशेष है, जिससे प्रेरणा पायी जाती है। वह एक से अधिक पदार्थों के संघर्ष से उत्पन्न, कम्पन सहित द्रव्य राशि है, उसे वायु या तरङ्ग की संज्ञा है, उसके प्राण, अपान, व्यान, उदान, व समान भेद हैं।

२६—प्राण वायु जीव के लिये प्रेरणापूर्वक बलात्मक, अपान वायु जीव के लिये अनावश्यकीय व बल-शोषणात्मक, व्यान वायु जीव के लिये स्वेच्छापूर्वक उपयोगात्मक, उदान वायु जीव के लिये संचालनात्मक तथा समान वायु जीव के लिये विकासात्मक है, इन सबका सन्तुलन उस इकाई के आहार, विहार, एवम् व्यवहार की रीति नीति एवम् स्थिति पर निर्भर है।

२७—प्राण, पोषण अन्न से होता है।

२८—अन्न आहार एवम् औषधि के भेद से है,

२९—शारीरिक व मानसिक विकृति (रोग) के निराकरणार्थ प्रयुक्त द्रव्य को औषधि तथा शारीरिक व मानसिक पोषण व परिवर्द्धन के लिये प्रयुक्त द्रव्य को अन्न की संज्ञा दी जाती है।

३०—प्राप्त कर्तव्य,-वांछित, प्रेरित, सूचित भेद से, निश्चयानुसार किये गये मनन, विचार, चेष्टा तथा प्रयास को निष्ठा की संज्ञा।

३१—निष्ठा के ही फलस्वरूप अर्थ की उपलब्धि होती है। जिसे भोग के रूप में मानव उपयोग में लाने की कामना की जाती हैं।

३२—क्रिया से ही भोग, भोग से गुण, गुण से प्रभाव, प्रभाव से विभव, विभव से विस्तार, विस्तार के अवधि, अवधि से विषमता, विषमता से संघर्ष, संघर्ष से प्रेरणा, और प्रेरणा से निर्णय, निर्णय से नियम, नियम क्रम से गति, गतिक्रम से प्रगति, प्रगति से योग एवम् योग से ही क्रियायें हैं।

३३—कारण गुण, गणितानुक्रम से प्राप्त निर्णय की सिद्धान्त संज्ञा है।

३४—काल विस्तार व गणना भेद से गणित, सम-विषम, मध्यस्त भेद से गुण, सापेक्ष व निरपेक्ष भेद से कारण है।

३५—क्रिया की अवधि को काल, रचना की अवधि को विस्तार, पदार्थ की अवधि को गणना, उद्भववादी गुण को (सापेक्ष शक्ति) को सम, प्रलयवादी को विषम, और विभववादी गुण को मध्यस्थ की संज्ञा है, जिनको क्रम से रजोगुण, तमोगुण, और सत्वगुण की संज्ञा भी है।

३६—क्रिया के पूर्व रूप की सापेक्ष कारण संज्ञा है।

३७—समष्टत्मक चेष्टा के पूर्व रूप की निरपेक्ष कारण संज्ञा है, इसलिये कि उसको उत्पत्ति क्रम प्राप्त नहीं है।

३८—प्रतिक्रिया-परिपाक, अन्याय से सापेक्ष कारण, निस्क्रय स्थिति न्याय से निरपेक्ष कारण का दर्शन है।

३९—क्रिया मात्र स्थूल व सूक्ष्म भेद से है।

४०—अनेक अणु परमाणु की सङ्गठित राशि की स्थूल, संज्ञा है। अणुविकता की सूक्ष्म संज्ञा है।

४१—तरङ्ग व अणु की संज्ञा भेद से सूक्ष्म अवस्था की स्थिति है, वह आर्द्र व निरार्द्र द्रव भेद से है।

४२—अर्द्र (रस) स्थूल व सूक्ष्म रूप में स्थित है।

४३—मनाकृति व आसक्ति से ही पूर्ण कृतियां हैं।

४४—मनाकृति से ही कृति, कृति से ही सुदुस्कृति, सदुस्कृति से ही आसक आसक्ति, आसक आसक्ति से ही गति, गति से ही प्रगति, प्रगति से ही

परिस्थिति, परिस्थिति से ही रीति, रीति से ही योग, योग से ही मनाकृतियां हैं।

४५—अनेक अणु सङ्गठित पिण्ड-विशेष की आकृति, उसके श्रम की कृति, उसकी प्रतिक्रिया से प्राप्त प्रभाव की सुदुस्कृति, क्रिया में आने की जो विवशता है (आकर्षण) उसको आसक्ति, उससे प्रेरित चेष्टा की गति, विकास व ह्रास के भेद से प्रगति, उसकी अवधि को परिस्थिति, परिस्थिति से प्रभावित स्थिति को रीति, व रीत्यानुसार स्वगं में जिसका अभाव हो वह दूसरे का स्वभाव हो, ऐसा उभय संसर्ग बात मध्यस्थ आकर्षण, प्रतिकर्षणपूर्ण तरङ्ग सहित विवशता की रति, उभयैक्य या निकटत्व को योग, योग से उत्पन्न सवेग की मनाकार संज्ञा है।

४६—मृत, पाषाण, मणि, धातु, व उसके विकार को पदार्थाकार, वनस्पति व अन्न और उसके विकार मात्र को प्राणाकार, पशु, पक्षी, जीव, मात्र में स्थित आशा को जीवाकार, मानव में स्थिति यथार्थ जानकारी ज्ञानाकार की संज्ञा है। क्योंकि वे क्रम से पदार्थावस्था, प्राणावस्था, जीवावस्था, एवं ज्ञानावस्था में हैं।

४७—मूल्याङ्कन जानकारी की भाव संज्ञा है, जो यथार्थ या अयथार्थ भेद से व्यक्त है।

४८—निभ्रान्त जानकारी के द्वारा मानव ने उचितमूल्याङ्कन किया है, अन्यथा वह अनुचित है।

४९—मानव ने अपने अवस्था भेद से ही हर सम्बन्ध में मूल्याङ्कन कार्य किया है, उससे ही सफलता एवं असफलता का अनुभव होता है।

५०—हृदय, मन, वृत्ति, चिन्त बुद्धि, यह पाँच इन्द्रियों से संबंधित विषयों के आधार पर हो और उसके आश्रय पर ही मानव-जीवन की अवस्था का निर्णय है। जो निम्नाङ्कित है।

५१—हृदय–विषयग्राही इन्द्रिय, मन-रसग्राही इन्द्रिय, वृत्ति मत्वग्राही इन्द्रिय, चित्त, गुणग्राही इन्द्रिय बुद्धि-सत्यग्राही इन्द्रिय है। आहार, निद्रा, भय,

मैथुन यह चार को विषय, स्वेच्छावादी चैन क्रिया को रस, ज्ञान अधिक मूल्यन को महत्व देने वाली प्रवृत्ति की तात्विक, रूप व शब्द के आकार में निहित चित्र व उसके अर्थ को गृहण करने वाले तथा व्यक्त करने वाले अङ्ग को चित्त, काल और क्रिया का बोध करने वाले, अङ्ग को, वृद्धि की संज्ञा है।

५२—अंक संघर्षमात्र प्राण, हृदय, क्रिया व शरीर में ही है, वह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन्द्रियों के माध्यम से है।

५३—मानव ने अपने में सफलता का अनुभव स्वार्थ परार्थ व परमार्थ प्रणाली से किया है। उसे लाभ, पद, यश व समाधान के भेद से किया है।

५४—प्राण का विषय हृदय, हृदय का विषय शरीर, शरीर का विषय कर्म और भोग है।

५५—शरीर, हृदय, प्राण समूह को स्थूल पिंड की संज्ञा, मन, वृत्ति, तथा चित्त को सूक्ष्म शरीर की संज्ञा, बुद्धि के कारण शरीर की संज्ञा है।

५६—कारण पिण्ड (बुद्धि) स्वायस्थ के अभिमुख व विमुख भेद से बोध किया है।

५७—कारण सूक्ष्मानुसार वृत्तियाँ हैं।

५८—सूक्ष्म स्थूल अनुसार कर्म है।

५९—सूक्ष्म पिण्ड का योग स्थूल से प्राण के द्वारा, स्थूल पिंड का योग सूक्ष्म से, मन के द्वारा है। सूक्ष्म कारण के योग चित्त के द्वारा है, प्राण सूक्ष्म भी है स्थूल भी है, उसी प्रकार चित्त सूक्ष्म भी है कारण भी है।

६०—विषय व ईषणावाद से संघर्ष का प्रादुर्भाव है, यह मानव के लिये आवश्यकीय नियमों को पालन करने के संदर्भ में जब कभी तिरस्कार होता है, तभी अपराध करने की प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं,··· जिससे ही मानव अपने में सफलता एवम् असफलता का अनुभव करता है।

६१—सफलता, स्वार्थ, परार्थ, परमार्थ भेद से है, सीमित अर्थ का

स्वार्थ, विशालता से सम्बन्धित का परार्थ, और यथार्थ की परमार्थ संज्ञा है।

६२—युद्ध पद, धन, यश व विवेक के भेद से लाभ का अनुभव है।

६३—अधिकार व अनाधिकार भेद से पद व धन, सुयश व अपयश के भेद से यश, लोक व लोकेश के लक्ष्य-भेद से विवेक है।

६४—हृदय तृप्ति के लिये, प्राण बल के लिये, मन सुख के लिये, वृत्ति शान्ति के लिये, चित्त सन्तोष के लिये बुद्धि आनन्द के लिये, अनवरत आतुर आकांक्षित एवं प्रतीक्षित है।

६५—अहंकार (स्वस्वस्म) पूर्ण मध्यस्थ, सर्वज्ञ व नित्य शान्त है, इसीलिये उनमें या उन पर क्रान्ति स्पर्श नहीं करती है।

६६—व्यवहार के स्वामी शरीर, शरीर के स्वामी हृदय-हृदय के स्वामी प्राण, प्राण के स्वामी मन, मन के स्वामी वृत्ति, वृत्ति के स्वामी चित्त, चित्त के स्वामी बुद्धि, बुद्धि के स्वामी स्वस्वस्म हैं।

६७—अहंकार (स्वस्वस्य) को साम्य शक्ति का स्पर्श, निरन्तर एक सा प्राप्त है, इसीलिये उनमें विकार नहीं है। विकार और विषमता सापेक्ष तथा सापेक्ष शक्तियों में ही पायी जाती है।

६८—मन के पूर्वापर अनुशासन के आसक्ति भेद से अनुभव भेद होता है।

६९—अनुक्रम से प्राप्त उत्पत्ति की अनुभव संज्ञा है।

७०—मन के पूर्वापर सम्बन्धानुक्रम से ही चैन-कर्म का भेद होता है।

७१—मन जब क्रम से प्राण, हृदय, शरीर एवं व्यवहार से प्रेरणा पाता है तब वह परानुक्रम कहलाता है, तब उनके चैन क्रिया उसी के अनुसार होती है और जब मन वृत्ति, चित्त व बुद्धि के द्वारा प्रेरणा पाती है, तब पूर्वानुक्रम के नाम से जानी जाती हैं। तब उसका चैन कार्य उसके अनुसार सम्पन्न होता है।

७२—मन, प्राण से मिलकर बल का, प्राण हृदय से मिलकर तृप्ति का, हृदय शरीर के द्वारा विषयों का, सेवन करने में व्यस्त हैं, जिसकी पूर्ति नहीं है, इसीलिये मानव को व्यस्तता एवं श्रम का अनुभव होता है।

७३—मन अपनी परानुक्रम दशा के स्थिति क्रम से प्राण, हृदय, शरीर, व व्यवहार से प्रेरित होकर तद्रूपन न्याय से व्यस्त है, जिसने आसक्ति की संज्ञा से जाना जाता है।

७४—मन की पूर्वानुशासन क्रम में वृत्ति, चित्त, बुद्धि से संयोजित, सम्बद्धित एवं अनुशासित होकर इन्द्रियों पर शासन भी किया है जिसे प्रेरणा की संज्ञा है।

७५—मन ने अपनी अनुशासित अवस्था में सफलता का, वृत्ति अवस्था में निर्विरोधता का, चित्तावस्था में विपुलत्व का, बुद्धि की अवस्था में यथार्थता का दर्शन किया है।

७६—आकार भेद से आसक्ति, आसक्ति भेद से अवस्था, अवस्था भेद से लक्ष्य, लक्ष्य भेद से नियंत्रण, नियंत्रण भेद से नीति, नीति भेद से निष्ठा, निष्ठा भेद से प्राप्ति, प्राप्ति भेद से अनुभव, अनुभव भेद से निश्चय, निश्चय भेद से आश्रय, एवं आश्रय भेद से आकार है।

७७—परस्पर आकर्षण ही आसक्ति है।

७८—पाने, जानने व करने में अपूर्णता के अनुभव से ही रहस्यता का प्रसव है, जिसका निराकरण यथार्थ दर्शन (भ्रम से मुक्त जानकारी) से ही होता है।

७९—यथार्थ दर्शन से निश्चय, उसके विपरीत अर्थात् संशय से उत्पन्न बौद्धिक संवेग को रहस्यता की संज्ञा से भी जाना जाता है।

८०—कार्य, विचार, ज्ञान के क्रम दर्शन की यथार्थ दर्श-दर्शन संज्ञा है, अथवा जो जैसा है वही उसका यथार्थ है, उसे वैसे ही जानने वाली जानकारी की यथार्थ दर्शन संज्ञा है। जो विवेक, व विज्ञान के नियमों के आधार पर है, जिसके आश्रित एक से अनेक सफल हैं, अन्यथा असफल हैं।

८१—प्रतिक्रिया परिपाक नियम से कार्य, गुण क्रम न्याय से विचार, घटना क्रम न्याय से कारण का ज्ञान होता है।

८२—प्रकृति, वस्तु एवं विकृति, भेद से घटना, व्यष्टि व समष्टिकृत भेद से विचार, एकत्व व अनेकत्व भेद से ज्ञान क्रम, घटना, परिणाम एवं फल परिपाक है।

८३—कार्य घनाक्रम से सम्पूर्ण पदार्थ, वस्तु, रसायन-क्रिया पद्धति से अन्न व वनस्पति, विषयानुक्रम न्याय से मनुष्यतर जीव और ज्ञान-क्रम से मानव जीवन व्यवस्थित है।

८४—जानकारी की ज्ञान संज्ञा है। वह सापेक्ष व निरपेक्ष भेद से है। निरपेक्षत्व ही व्यापक है। जिसका अनुभव निराकर्षण पद्धति से है और सापेक्षता तादाद में तद्रूप, तत्सन्निधि और तदावलोकन के भेद से है।

८५—सापेक्षत्व दृष्टि, दृश्य और दर्शन के अवस्था भेद से हैं।

८६—दृष्टा—मह-तत्व पुरुष, केन्द्रीय, स्वस्वसा, अधिष्ठान, पूर्ण, सहज एवं सर्वज्ञ यह सब एक ही के पर्यायवाची संज्ञायें हैं। क्योंकि इन सबमें निर्देशित इकाई वह है, जो अस्तित्व का अनुभव करता है जो 'मैं' है।

८७—प्रकृति में ही वनस्पति, वस्तु एवं विषय की कल्पना, प्रेरणा, चेष्टा, कार्य, प्रतिक्रिया, प्रभाव, व्यंजना, क्रान्ति, परिपाक, प्रवृत्तियाँ प्राप्त हैं। यह व्यष्टि व समष्टि के भेद से है। यह सापेक्ष भाव का अनुस्यूत (निरंतर) नियति क्रम है।

८८—क्रान्ति से भ्रान्ति, कर्तव्य से ही शान्ति है।

८९—निरपेक्ष केन्द्रीय होने के कारण सर्वतोमुखी दर्शन से ही तृप्त है। बाकी सब बुद्धि, चित्त, वृत्ति, मन यह केन्द्र से अतिरिक्त या केन्द्र के आश्रित होने के कारण प्रयास में व्यस्त हैं। इसीलिये आत्मदर्शी जीवन के लिये उपदेश हैं।

९०—मृदु, पाषाण, मणि, धातु, यह सब अपने आण्विक दशा में सचालित होने के कारण, गतिमान और संगठित और विघटित स्थितियों में है, जिसकी परिणाम सीमा निश्चय है।

९१—अन्न, वनस्पति मात्र की स्थिति में पदार्थ के अनुसार संगठन, विघटन आदि सभी लक्षण निहित रहते हुये, उसके आरोह, अवरोह, सप्राण, एवं निष्प्राण भेद है।

९२—मनुष्यतर जीव मात्र का परिणाम पदार्थ व वनस्पति की सभी क्रियाओं सहित हृदय के व्यवस्था अनुसार है। वह संगठन, विघटन, आरोह, अवरोह, सप्राण, निःस्प्राण, सबल, दुर्बल, विवश व विह्वल अवस्था भेद में से है।

९३—मानव मात्र के परिणाम, पदार्थ, वनस्पति व जीवदशा के सम्पूर्ण लक्षण सहित, ज्ञानानुक्रम से प्रकाश, विकाश, लोक आलोक, लोकेश के लक्ष्य से विषय व ईषणा के आश्रय भेद से हैं।

९४—मानव हृदयावस्था में विषयाकार से, विषयाकार से श्रम में, मनाकार से ईषणा, ईषणा से विवशता में, वृत्ति अवस्था से लाभाकार, के प्रयास में, चित्तावस्था से कला के आकार में, बुद्ध्यावस्था से यथार्थ दर्शन में, स्वस्वसा से अवस्था से दृष्टाकार में तथा पूर्णता के अनुभव में रत हैं।

९५—विषय विहिता विहित (उपयोग और अनुपयोग) भेद से है। ईषणायें पात्रा-पात्र भेद से, वृत्तियाँ लाभा-लाभ भेद से, कला पूर्णापूर्ण भेद से, स्वस्वसा में तटस्थता परमानन्द के अनुभव से है, क्योंकि वह निरन्तर एक सा विद्यमान है।

९६—विहित विषयों से मोह, अविहित विषयों से क्षोभ का प्रसव है।

९७—मुग्धता की मोह संज्ञा है। वह दूसरे के प्रयास से स्वयं को खो जाना ही है, जो अयथार्थता की स्थिति हैं, वह उत्थान व पतन के साधन हैं।

९८—विरोध से प्राप्त, संवेगों की क्षोभ संज्ञा है।

९९—रूप, बल, बुद्धि के विकास उनकी गति पर निर्भर हैं और विकास भेद से ही पात्रापात्र निर्णय होता है।

१००—लोक सेवन से ही प्रेय व लोकेश सेवन से ही श्रेय का अनुभव है।

१०१—सत्य निरूपण क्रिया की पूर्ण कला व असत्य निरूपण क्रिया की अपूर्ण कला की संज्ञा है।

१०२—बदलने वाली दृष्टि को अनित्य, शाश्वत दृष्टि की नित्य संज्ञा है।

१०३—न्याय से पद, उदारता से धन, दया से बल, चरित्र से रूप, विवेक से बुद्धि, निष्ठा से अध्ययन, कर्त्तव्य से सेवा, संतोष से तप, स्नेह से लोक प्रेम से लोकेश, आज्ञा-पालन से रोगी तथा बालक का कल्याण है, अन्यथा असफल एवं अकल्याण सिद्ध है।

१०४—एक कुटुम्ब पतित्व से अनेक लोक पतित्व तक यह होता है। सहकार्य, सहयोग, भेद से उदारता है, लोक व आलोक भेद से विवेक है, पोषण व उत्पादन भेद से दया है, लोक व लोकेश भेद से लक्ष्य है। सेवा निष्ठा, तृप्ति व समृद्धि के आशय भेद से सन्तोष, तत्सुख व स्वसुख भेद से निस्पृह सेवा, निर्विरोध, अनुसरण भेद से स्नेह व निरपेक्ष भेद से प्रेम, अपेक्षित व अनुशासित भेद से आज्ञा-पालन है।

१०५—अनुशासनार्थ किये गये प्रयास की शासन संज्ञा है, अनुकरण करने वाली प्रक्रिया की अनुसरण संज्ञा है।

१०६—बाह्यान्तरंग नियम पालन ही तप संज्ञा है।

१०७—मानव के लिये आवश्यकीय नियम सहित प्रतिफलापेक्षा से युक्त की गई सम्पूर्ण क्रिया की स्नेह संज्ञा है।

१०८—निरपेक्षत्व की प्रेम संज्ञा है।

१०९—स्वनिहित लाभ के लिये प्राप्त उपदेश को स्वीकार करने वाले प्रवृत्ति की आज्ञा पालन संज्ञा है। उपर्युक्त परिपाटी से मानवीय व्यवहार स्वर्गीयता का साधन सिद्ध होता है।

न्याय व अवसर

१—मानव जीवन न्याय व अवसर के आश्रय भेद से व्यवस्थित हैं।

२—जिससे जिसका अस्तित्व या व्यवहार नियन्त्रित है उसकी आश्रय संज्ञा है।

३—न्यायाश्रित मनुष्य मात्र धर्माधर्म सत्यासत्य, नित्यानित्य के ज्ञाता व निर्दोष जीवन ये रत है, जिनको न्यायवादी जीवन के नाम से जाना जाता है। उनका कर्तव्य व लक्ष्य, पूर्ण तथा स्पष्ट है ऐसा सिद्धान्तानुक्रम कर्तव्य लक्ष्य ही आनन्द है जो निश्चित नियम पूर्वक ही नियन्त्रित है।

४—समयवादी मानव प्रिया-प्रिय, हिताहित, लाभालाभ के ज्ञाता व प्रयत्नशील हैं जो असन्तुष्ट हैं। उनका कर्तव्य से लक्षित लक्ष्य भी सुख है, किन्तु समयवादी जीवन से उसकी पूर्ति नहीं है, क्योंकि वह अस्पष्ट व अस्थिर है। और समयवाद का अर्थ ही है, परिस्थिति से बाध्य हो जाना, परिस्थितियाँ ही किसी क्रिया की प्रतिक्रिया हैं।

५—कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र व ब्रह्माण्ड के जीवन में क्लेश उत्पन्न करने वाली समस्त प्रवृत्ति मात्र की सदोष-विचार अन्यथा को निर्दोष विचार संज्ञा है।

६—व्यवहार, हृदय, मन, वृत्ति, चित्त-बुद्धि के परस्पर विरोध भेद से क्षोभ है। निर्विरोध में ही सुख, शान्ति, सन्तोष, व आनन्द है।

७—कार्य, हृदय, प्राण, मनाश्रित होने के कारण थी मनस्थिति क्रम से प्राण, हृदय व कर्म के आकार में व्यस्त है, जिससे हो श्रम का अनुभव है।

८—कर्म व हृदय, हृदय व प्राण, प्राण व मन, यह सम्पूर्ण विरोध का प्रभाव मन पर ही है। अर्थात् मन ही सुख दुःखों का अनुभव करता है।

९—कारण पिण्ड के अनुकूल, सूक्ष्म, पिण्ड सूक्ष्म पिण्ड के अनुकूल स्थूल, पिण्ड, क्रम प्रणाली से विकास है; अन्यथा में ह्रास है।

१०—सत्यानुक्रम न्याय से किया गया अभ्यास अनुकूल प्रयास है और पूर्ण है।

११—पूर्ण विकसित जीवन के लिये बुद्धि को पूर्ण अनुभव नित्य एवं सत्य का, चित्त को विहित चिन्तन सत्य और धर्म का, वृत्ति को विहित तुलन धर्म और न्याय का, मन को विहित चयन न्याय और लाभ का होना अनिवार्य है जिससे ही विज्ञान एवम् विवेक का प्रादुर्भाव होता है।

१२—अपूर्णता के आरोप से बुद्धि-क्षोभ, अनित्य, असत्य, अधर्म चिन्तन से चित्त क्षोभ, अन्याय, अप्रिय अहित वृत्ति से वृत्ति क्षोभ अवैज्ञानिक मनन व उसके आश्रित कार्य से मन-क्षोभ, उसी के अनुसार प्राण हृदय, शरीर, कार्य व सम्पर्क व्यापी क्षोभ है।

१३—मानव सम्पर्क के क्षोभ से विरोध क्रूरता व असंवृद्धि का प्रसव है। शरीर क्षोभ से रोग व क्षीणता का प्रसव है। प्राण क्षोभ से व्याकुलता व क्रोध का प्रसव है। मन-क्षोभ से असह-अस्तित्व (द्वेष) दुःख का प्रसव है। वृत्तिक्षोभ से प्रमाद व कायरता व अशान्ति का प्रसव है। चित्त-क्षोभ से असन्तोष व कृतिमता के प्रसव हैं। एवम् बुद्धि क्षोभ से अभिमान व कृतघ्नता का प्रसव है।

१४—बीज भेद से कोष भेद, कोष भेद से यंत्रीकरण भेद, यंत्रीकरण भेद से सङ्गठन भेद, से सङ्गठन भेद, से वर्ग भेद, वर्ग भेद से स्वभाव भेद, स्वभाव भेद से जाति भेद, जाति भेद से कार्य भेद, कार्य भेद से बीज भेद है।

१५—मनुष्योत्तर जीवमात्र के जीवन विज्ञानमय कोष के अभाव के कारण परतन्त्र है। मानव उसे पाकर (विज्ञानमय कोष को पाकर) कर्म करते समय स्वतन्त्र हैं। जिसने कारण गुण, गणित के द्वारा व्यष्टि व समष्टि के स्थूल व सूक्ष्म तथा कारण पिंड का दर्शन किया है।

१६—परिक्रामक जीवन में स्वभाव वैकल्य (बदलता) नहीं है, मानव कर्म करते समय स्वतन्त्र होने के कारण उनके स्वभाव में वैकल्यता उनके प्रयास से या प्रयोग पर ही निर्भर है।

www.madhyasth.org

१७—स्वतंत्र को ही धर्म-अधर्म सविरोध मर्मज्ञता अधिकार है, स्वतंत्र विचार मूल प्रवृतियों पर ही आश्रित है, मानव में विचार-बीज है, क्योंकि उसी के अनुसार उनका ह्रास व विकास है।

१८—चेष्टांकुर विवशता व विचार क्रम से पदार्थ, प्राण जीव, व ज्ञान की व्यवस्था भेद हैं।

१९—बीजस्थ। संस्कार) मनुष्य की बौद्धिक अवस्था भेद पर ही निर्भर है।

२०—अनित्य अवस्था स्थुल रूप में है। सूक्ष्म रूप अमरावस्था में है और कारण रूप नित्यावस्था में है, इस प्रकार से जो पदार्थ की अवस्थायें तीन सिद्ध होती हैं, (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण)।

२१—अनित्य अवस्था में परिणाम से मुक्ति नहीं है। अनित्य अवस्था में परिणाम के सहित उद्भव, विभव प्रलय के रूप में सृष्टि है।

२२—बीज मात्र उद्भवानन्तर प्रलय की ओर प्रलयानन्तर उद्भव की ओर अनवरत प्रगतिमान है।

२३—प्रलय से उद्भव पर्यन्त अवधिस्थ की बीज संज्ञा है। उद्भव से प्रलय पर्यन्तावधिस्थ की विभव(पालन) संज्ञा है।

२४—न्यायाश्रित मानव द्वारा की गई समस्त क्रिया मात्र सुकृत परिणाम, परिपाक फल हेतुक है, (अवसरवादिता) समयाश्रित से किया गया विकृत परिणाम, परिपाक फल हेतुक है।

२५—मौलिकता से अधिक मूल्य की ओर सुकृत, अधिक मौलिकता से न्यून मूल्य की ओर विकृत परिणाम परिपाक व फल संज्ञा है।

२६—व्यवहार दशा में क्रम से एक व्यक्ति, कुटुम्भ, समाज, राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्र, ब्रह्मांड क्रम से अनेकत्व में गुरु मूल्य निहित है।

२७—शोषण व पोषण के मार्ग भेद से न्यूनानून मूल्यन का प्रसव है।

२८—लघुत्व, गुरुत्व पर सङ्कीर्णत्व व्यापकत्व पर, अल्पत्व बहुत्व पर व्यष्टित्व, समष्टित्व पर, अज्ञान ज्ञान पर, अनाधिकार पर, अधिकार करने का प्रयास सफल नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति का नियम है।

२९—एक—अनेक के अनुकूल हो सकते हैं, पर अनेक--एक के अनुकूल नहीं है, एक को अनेक ने अनुसरण, या अनुकरण करने का प्रयास किया है।

३०—एक व्यक्ति एक कुटुम्भ के, एक कुटुम्भ एक समाज के, एक समाज राष्ट्र के, एक राष्ट्र, जगत के एक अन्तर्राष्ट्र ब्रह्माण्ड के अनुकूल मार्ग में से स्वर्गीयता का अन्यथा में क्लेश का अनुभव मानव ने किया है।

३१—मानव को आवश्यकीय नियम पालन मार्ग की अनुकूल, उसके विपरीत आचरण की प्रतिकूल संज्ञा है।

३२—रूप बल, बुद्धि, यह बौद्धिक एवम् वैयक्तिक, सम्पत्तियाँ हैं, उनकी सफलता केवल, सांस्कृतिक एवम् बौद्धिक नियम पालन में ही हैं जो चरित्र, दया एवम् विवेक से ही सफल होता है।

३३—जन धन और यश, कौटुम्भिक सम्पत्तियाँ हैं, जिनकी सफलता उनके पोषण वादी न्यायपूर्ण नियमों को पालन करने वाली नीति को अपनाने से ही है।

३४—मार्ग दर्शन विचार ही समाज की सम्पत्ति है। जो व्यापकता की ओर मार्ग दर्शन या दिग्दर्शन करने पर ही सफलता ही विपरीतता की ओर ही सफलता है।

३५—विज्ञान व विवेकपूर्ण नियमानुसार किये गये प्रयास से सफल अन्यथा असफल है।

सामाजिक मार्ग दर्शन का दायित्व

३६—घृणा विज्ञान व द्वेष से युक्त मार्ग दर्शन से सङ्कीर्णता उसकी मुक्ति से व्यापकता की ओर प्रगति है।

३७—न्याय ही विधान, विधान ही शासन, शासन ही विज्ञान, विज्ञान ही न्याय है।

३८—न्याय का आचरण सहित निस्मण करने वाले को विचारक, जानने व मानने वाले को विधायक, मानने वाले को शासक, जानकारी कराने वाले को प्रचारक, अनुशरण करने वाले को सम्य (प्रजा) संज्ञा है।

३९—शासक विचारक और विचारक शासक नहीं होता।

४०—शासनावस्था में व्यापक विचार का विचारादस्था में शासकता का अवकाश नहीं है यह मनोविज्ञान की रीति से सिद्ध होता है।

४१—न्याय, धर्म, सत्य ये सबके लिये एक हैं।

उक्त तीनों आवश्यकीय अनेक मार्ग में से व्यवहार में समन्वय करने हेतु एक या अनेक से किया गया जो विधि विहित विचार-निर्माण है उसकी 'विधान' संज्ञा है।

४२—निर्णायक अधिकार के अनुसार किये गये विधान की नीति पर ही राष्ट्र, समाज एवम् प्रजा का चरित्र-चित्रण निर्भर है।

४३—तत्य दर्शन से ही निर्मान्ति, निराकरण, मनोबल, सुख कर्त्तव्यता, स्नेह-अनुराध, शान्ति, सन्तोष, प्रेम, सहजत्व पूर्णता क्रमशः अन्योन्याश्रित तत्य हैं।

४४—मात्र आरोप की भांति संज्ञा है।

४५—केन्द्रीकृत मनः स्थिति की सुख, उत्तरदायित्व वहन करने वाली प्रवृत्ति की कर्त्तव्यता, लोक दर्शन से उत्पन्न अप्रतिकार पूर्ण मनः स्थिति को स्नेह लोकेश की निर्भ्रान्ति जानकारी से प्राप्त बौद्धिक संवेग पूर्ण तरङ्ग को अनुराग, वेदना रहित अन्तरङ्ग स्थिति को शान्ति, अभाव, के अभावित बौद्धिक

अवस्था की सन्तोष निरपेक्षता का अनुभव दशा को प्रेम, अकृत्रिमता को सहजता, सर्वतोमुखी समाधान को पूर्णता, सर्वाङ्गीण दर्शन, तथ्य को क्रिया में उपजाने वाली बुद्धि की निर्भ्रान्ति संज्ञा है।

४६—पवित्र विचार की मनोबल, मनोबल ही कर्त्तव्य निष्ठा, कर्त्तव्यनिष्ठा ही समृद्धि, समृद्धि ही सहअस्तित्व, सहअस्तित्व ही पवित्र विचार है।

४७—विचार ही मानव जीवन का चित्र है।

४८—मनोबल के बिना मानव जीवन सर्वथा सफल नहीं है। मनोबल के बिना न्यायपूर्ण जीवन की प्रतिष्ठा एवम् अवसरवादी जीवन पर शासन नहीं है।

सापेक्ष एवम् निरपेक्ष

१—तथ्य का निर्णय कारण गुण, गणित में ही है। वह सापेक्ष एवम् निरपेक्ष भेद से है।

२—घटना की पृष्ठ भूमि को कारण सापेक्ष शक्ति को गुण, गणना क्रिया की गणित संज्ञा है।

३—क्रिया को प्रतिक्रिया नियन्त्रण न्याय दर्शन को सापेक्ष कारण जिसके अस्तित्व में सापेक्षता न हो अथवा जिसके उत्पत्ति क्रम समाप्त न हो या जिसकी उत्पत्ति न हो, स्थिति हो, ऐसी स्थिति की निरपेक्ष कारण संज्ञा है।

४—योग वियोग, दोहद (पोषण) क्षय, प्रभाव, परिपाक, क्रम दर्शन को सापेक्ष-गुण दर्शन, उससे मुक्त की गुणातीत संज्ञा है।

५—गणना, काल विस्तार व संख्या के समन्वयात्मक दर्शन को गणित उससे परे की अगणित संज्ञा है।

६—उक्त वर्णित न्याय क्रमत्रय से ही मानव में एक मत वाक्य एवम् सिद्धान्त है, जिसके आश्रित एक से अनन्त तक सह-अस्तित्व की ओर प्रगतित है।

७—प्रधानत: कारण न्यायानुक्रम से व्यापकता को (ईश्वर), गुण क्रम न्याय से सांस्कृतिक व्यवस्था एवं नीति को, गणितानुक्रम न्याय प्राकृतिक सम्पत्ति को एवं उसके उपयोग को, निर्णय करने से ही सम्पूर्ण निर्णयात्मक विधियाँ सुलभ हैं अन्यथा दुर्लभ हैं।

८—वायु,रस, खनिज, वनस्पति व उसके आश्रित या उसके विकार को प्रकृति संज्ञा है जो स्थूल व सूक्ष्म भेद से है।

९—सांस्कृतिक व्यवहार निश्चित व मनित भेद से है, वह वैयक्तिक सामूहिक, राष्ट्रीय व समूह पर निर्भर है जो मानव के सह-अस्तित्व व असह-अस्तित्व को निर्देश करता है।

१०—समूह से की गई संस्कृति की संज्ञा है।

११—स्थिर, शास्वत, स्वतन्त्र स्वभाव वादी सत्ता की निरपेक्ष कारण संज्ञा है। अस्थिर, नश्वर, परतन्त्र, स्वभाव वाले की सापेक्ष कारण संज्ञा है।

१२—सार्वभौमिक, सैद्धान्तिक जानकारी को प्राप्त करने के अन्तर जीवन क्रम कल्पना का चित्रण करने वाली व प्रवृत्ति की निश्चय, असिद्ध दशा की अनुभवों में किये गये आचरण एवम् प्रयास की मानित संज्ञा है।

१३—माना हुआ को जानने से, जाना हुआ को मानने से ही मानव में समाधान की उपलब्धियाँ हैं।

१४—जाना हुआ को न मानने से, शरारती, माना हुआ को न जानने से ही रूढ़िवादिता का प्रादुर्भाव है, जिससे हो मानव के लिये सम्पूर्ण समस्यायें हैं।

१५—निश्चयवाद ही धर्म है, क्योंकि निश्चय बराबर सुख है, और जिससे मानव में एकता की सम्भावना भी हैं, मान्यता ही मत है, भ्रान्ति है और मानव को अनेकता में विभक्त करता है, इसीलिये वह क्लेश का साधन है।

१६—मानव का धर्म है, मत अनेक है, और ईश्वर एक है देवता अनेक हैं।

१७—सार्वभौमिक सिद्धान्तानुसार ही "धर्म" का निर्णय है, और "मान्यता", राष्ट्र, देश, भाषा, वर्ग, पक्ष, जाति व्यक्ति व बल के प्रयास भेद से है जो स्पर्धा, आतङ्क विद्वेष से मुक्त नहीं है।

१८—नियम ही सर्वमानव को निर्विवाद, एवम् मान्यता ने मानव को वादग्रस्त किया है, जिससे व्याकुलता व आन्दोलन है वह मानव के आवश्यकीय नियमत्रय पालन व उल्लंघन पर ही निर्भर है।

१९—ऋतु क्रम अनुकूल व प्रतिकूल भेद से है वह जीव मात्र के लिये सहनीय व असहनीय क्रम में है।

२०—रसायन प्राकृतिक, एवं कृत्रिम भेद से है और वह ह्रास व विकास मार्ग भेद से प्राप्त है।

२१—अण्विक परिवर्तन-क्रिया-प्रणाली की रसायन संज्ञा है।

२२—जो जितना दीर्घ परिणामी हो वह उतना विकास शील है अन्यथा में विपरीत है।

२३—सापेक्ष, प्रेरणा व स्फुरण की सगुण संज्ञा है। निरपेक्ष बोध की निर्गुण संज्ञा है। दूसरे के बिना जिसको कार्य सिद्ध न हो उसकी सापेक्ष उसके विपरीत की निरपेक्ष संज्ञा है।

२४—स्थूल व सूक्ष्म भेद से गणना दर्शन है, वह रूप क्रिया, काल भेद से स्थूल का, गति, तरङ्ग, प्रभाव भेद से सूक्ष्म का गणना दर्शन है।

२५—आयतन, आकार, घन, भेद से रूप, भ्रमण, संचालन अनुसरण भेद से क्रिया, भूत, भविष्य, वर्तमान भेद से काल की गणना है।

२६—लोकालोक भेद से अर्थ है—ऋणु व धन भेद से गणनाक्रम है जो शून्य के पूर्वा पर क्रम भेद से है।

सफलता की कामना

१—मानव ने अध्ययन व व्यवसाय के आश्रय व प्रयास से सफलता की कामना की है ।

२—वैज्ञानिक व अवैज्ञानिक भेद से अध्ययन है जो वाङ्मय व क्रियामय भेद से है।

३—प्राकृतिक व कृत्रिम भेद से क्रियायें हैं।

४—रूप, रस, वायु, शब्द में निहित गुण, धर्म स्वभाव को एवम् उसके क्रमोत्पत्ति न्याय दर्शन प्रयास की प्राकृतिक क्रियाध्यापन संज्ञा है, उसके उपयोग करने हेतु जो प्रयास है उसकी मानवकृत अध्ययन संज्ञा है।

५—घनीभूत-पदार्थ-व्यूह को रूप; द्रव,—पदार्थ-व्यूह को रस, तरङ्ग को शब्द, उसके वेग को वायु संज्ञा है।

६—स्थूल व सूक्ष्म भेद से क्रिया हैं जो व्यष्टि व समष्टि भेद से स्थिति में है, सूत्र, छन्द, गीत, गद्य, पद्य, भाषा, मनन, चिन्तन भेद से जो अध्ययन है, वाङ्मय रूप में है।

७—अधिष्ठान के साक्ष्य में बुद्धि के द्वारा बोध पूर्वक स्मरण सहित की गई जानकारी को अध्ययन संज्ञा है ।

८—स्वस्वरूप ही अधिष्ठान है।

९—तथ्य दर्शन की स्वबोध संज्ञा है, अन्यथा की अबोध संज्ञा है।

१०—जो जैसा है उसे वैसा ही दर्शन करने वाली क्रम प्रणाली की तथ्य दर्शन संज्ञा है।

११—वातावरण, प्राकृतिक एवम् (मानवकृत) भेद से है।

१२—प्राकृतिक वातावरण राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय नीति पर एवम् मानव कृत वातावरण—वर्तमान को पूर्व किये गये व्यवहार के प्रतिरूप में है।

१३—बौद्धिक विचार में ही बौद्धिक स्वर्ग व नरक है, जिसे सुख और दुःख की संज्ञा से भी ज्ञाना से भी जाना गया है।

१४—मानवकृत वातावरण मानव के आसक्ति भेद से हैं, क्योंकि आशा के अनुकूल में ही उनकी प्रगति व प्रयास है।

१५—राग, द्वेष, अविद्या, अभिमान एवं भय सम्बन्धी मूल प्रवृतियों के आश्रय पर किये गये विचार से बौद्धिक नरक का अनुभव है, एवं असंग्रह स्नेह, विद्या, सरलता, एवम् अभयात्मक मूल प्रवृत्तियों के आधार पर किये नये विचारों से स्वर्ग का अनुभव है, जो ह्रास एवम् विकास का मूल भूत कारण है।

१६—सम्पूर्ण विचार, दस मूल प्रवृत्तियों पर ही आश्रित है, जिसमें से पाँच मूल प्रवृत्तियां स्वर्गीय एवम् पंच मूल प्रवृत्तियाँ मानव में नारकीय रूप में अनुभव में आतीं हैं।

१७—मूल प्रवृत्तियों के अनुभव में मानसिक व्यस्तता उसके अनुसार ही मनस्वस्थ्यता, उसके आश्रय में काया व्यूह, उसके अनुसार उपयोग, उसके अनुसार तन्दुरुस्तता, उसके अनुसार प्राण का वेग, उसी के अनुसार मनस्वस्थ्यतायें हैं।

१८—मन व शरीर के अपव्यय से प्राण उद्विग्न है।

१९—मानव-जीवन की सफलता केवल मानसिक व शारीरिक स्वस्थता पर ही आधारित है, जिससे विभिन्न मनः स्थितियाँ प्रस्तुत होती हैं।

२०—मनः स्थिति भेद से विचार भेद, विचार भेद से भाव भेद, भाव भेद से चेष्टा भेद, चेष्टा भेद से फल भेद, फल भेद से मूल प्रवृत्तियों का भेद, मूल प्रवृत्तियों के भेद से विवशता भेद, विवशता भेद से विचार भेद, बिचार भेद से ही मनः स्थिति भेद है।

२१—समस्त कार्य शास्त्र और विचार भाव भेद से ही सफल व असफल है।

२२—भाव भेद से विचारों में विषमता, अर्थ भेद से शास्त्रों में विषमता नियम भेद से कर्म की विषमता का प्रसव है।

२३—भाव शुद्धि के लिये उपदेश व आदेश भी हैं।

२४—जो जैसा है उसका वैसा ही मूल्यांकन करने वाली क्रम पद्धति को शुद्ध मूल्यन अन्यथा की अशुद्ध मूल्यन संज्ञा है।

२५—नियम पालन भाव की शुद्ध आचरण अन्यथा की अशुद्ध आचरण संज्ञा है।

२६—हीनता, दीनता और क्रूरता को त्यागने से धीरता, वीरता, उदारता को अपनाने से व स्नेह पूर्ण कर्त्तव्य नियम से ही मानव जीवन सफल है।

२७—विश्व के साथ अप्रत्यक्ष रूप में किये घातकवादी प्रवृत्ति एवं आचरण की हीनता, भयवादी प्रवृत्ति को दीनता आतंक उत्पन्न करने वाली प्रवृत्ति की क्रूरता संज्ञा है।

२८—मान्यता में जो स्थिर प्रतिज्ञा है उसकी विश्वास संज्ञा है।

२९—जानकारी सहित मान्यता में जो प्रतिज्ञा है उसको दृढ़ता की संज्ञा है।

३०—उत्तरदायित्व की वहन करने वाली प्रवृत्ति व आचरण की धीरता संज्ञा है।

३१—आपत्ति में असंतुलित न होने वाली प्रवृत्ति की वीरता संज्ञा है।

३२—निरन्तर न्याय का आचरण करने वाली प्रवृत्ति की उदारता संज्ञा है।

३३—उत्तरदायित्व का बोध न होने से या बोध होते हुये भी पालन न करने से मानव चरित्र का पतन होता है।

३४—मानव के उत्तरदायित्व का बोधगम्य आचरण रतवादी नीति को अपनाने से ही जीवन सफल है, जिससे कुटुम्ब, समाज एवं शासन की एक-सूत्रता है।

३५—न्याय के अध्ययन व आचरण से कुटुम्ब, सत्य का सन्देश, उपदेश व निर्देश से समाज, नियम का निरीक्षण संरक्षण व आदेश से शासन सफल है।

३६—रूप, गुण, क्रिया, स्वभाव व्यापिनी जातिवाद से, सिद्धान्तवादी मतवाद से, नियमाचरण-वादी वर्ग वाद से, सार्वभौमिक लक्ष्यवादी सम्प्रदाय-वाद से, यथार्थवादी पक्षवाद से, पूर्ण बोधवादी भाषा वाद से, सहअस्तित्व वादी तथा न्याय पालन वादी राष्ट्रवाद से ही मानव जीवन स्वर्गीयता की ओर प्रगतित है।

३७—संग्रह विचार से शोषण, अभिमान विचार से संकीर्णता द्वेष विचार से द्रोह, अविद्या विचार से असफलता, भय विचार से दयाकुलता निहित है, इसीलिये वे मानव को सफल बनाने में सक्षम नहीं है।

३८—विशेषज्ञता का निर्णय, अनुभव, चरित्र अध्ययनुक्रम से प्राथमिकता देने वाली नीति को अपनाने पर वह सफल होता है।

३९—न्याय के विपरीत (अन्याय) आचरण एवं प्रचार को दमन करने वाली विधान नीति को क्रिया में लाने से ही राष्ट्र का अभ्युदय मार्ग प्रशस्त होता हैं। अस्तु वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय जीवन को शृङ्खला बद्ध करने योग्य सार्वभौमिक विज्ञान व विवेक पूर्ण नियम संगत करने पर ही परस्पर निहित आतंक, विग्रह, निग्रह का दमन हो सकेगा। साथ ही मानव से चिराशित स्वर्गीयता की सफलता पूर्ण होगी।

मानवता के पोषक एवं शोषक

१—मानव ही मानव का प्रधान पोषक एवं शोषक है।

२—मानव के सम्पर्क ने ही मानव को देव, दिव्य, पशु, राक्षस तथा मानवता का आकार प्रदान किया है।

३—सहकारवादी प्रवृत्ति सहित नियमों का आचरण करने से मानव, सहयोगवादी विचार सहित नियमों का पालन करने वाले को देव-मानव, सहयोग वादी विचार सहित नियमों को पालन करने वाले को दिव्य-मानव संज्ञा से जाना जाता है, तथा भय सहित विषयवादी मानव को पशु, आतंक-वादी विचार सहित अपराध कार्य में रत मानव की राक्षस मानव संज्ञा है।

४—विश्व कल्याणवादी आचरण, विचार पूर्ण जीवन दिव्य, स्व-कल्याण वादी देव एवं न्यायवादी जीवन की मानव संज्ञा भी है।

५—स्व-स्वरूपानुभूति की कल्याण संज्ञा है। व्यष्टि अस्तित्व के सहित स्व-कल्याण, उससे रहित की विश्व कल्याण संज्ञा है।

६—दीनता सहित जीवन को पशु मानव, क्रूरता सहित की राक्षस मानव संज्ञा है।

७—पशु मानव से विज्ञान, चरित्र एवं अर्थ का ह्रास, राक्षस मानव से उसका अपव्यय, मानव से सदुपयोग, देव मानव से विकास, दिव्य मानव से पूर्णविकास है।

८—व्यय भेद से आय भेद, आसक्ति भेद से व्यय भेद है।

९—स्वबोध के बिना अधिष्ठान का साक्षी, अधिष्ठान का साक्षी के बिना सत्य बोध, सत्य बोध के बिना सह-अस्तित्व सहअस्तित्व के बिना स्वर्गीयता, स्वर्गीयता के बिना सफल जीवन, सफल जीवन के बिना स्वबोध जीवन नहीं है।

१०—बौद्धिक विकास से ही मानव की अवस्था व्यवस्था जीवन, व्यवसाय एवं बोध उपलब्धि है।

११—स्वबोध, पूर्णबोध, सत्य बोध, गुण बोध, तत्व-बोध, रसबोध, लोक बोध, विषय बोध यह बोध के भेद हैं।

१२—स्वबोधावकास केवल मानव में ही है। जिसके बिना मानव जीवन सफल नहीं है।

१३—घनीभूत पदार्थ का रूप, द्रव पदार्थ का रस, संघर्ष से उत्पन्न तरंग का शब्द, तरंग के वेग की वायु संज्ञा है।

१४—एक से अधिक एकत्रित होने पर संघर्ष ही उससे उत्पन्न क्रान्ति की तरंग संज्ञा है। उसके प्रत्याघात की शब्द संज्ञा है।

१५—सम्पूर्ण सृष्टि को विघटित अवस्था की परमाणु संज्ञा पिण्ड व द्रव अवस्था की अनित्य संज्ञा भी है, जो कम्पन व आन्दोलन के आश्रित है।

१६—सृजनानुकूल, आण्विक प्रगति को कम्पन, विसर्जनानुकूल की आन्दोलन संज्ञा है।

१७—अंतरंग व बहिरंग भेद से क्रियायें हैं।

१८—अन्तरंगिक क्रिया केन्द्रीकृत अथवा विकेन्द्रीकृत मस्तिष्क के आश्रय भेद से है।

१९—बहिरंग क्रिया स्वेच्छा परेक्षा व अनिच्छा भेद से है।

२०—स्वेच्छा निश्चित व मानित भेद से है।

२१—केन्द्रीकृत मस्तिष्क कालातीत व कालगत भेद से, विकेन्द्रीकृत मस्तिष्क वैज्ञानिक व अवैज्ञानिक भेद से, निश्चयवादी मस्तिष्क क्रिया, प्रयोग व अनुकरण भेद से स्वेच्छात्मक क्रिया प्रेरित सूचित बोधित भेद से अनिच्छात्मक क्रियाएँ (घटनायें) रोग व मृत्यु के रूप में हैं।

२२—घटना क्रमानुसार अनिश्चित क्रियाएँ विचार क्रमानुसार इच्छावादी क्रियाएँ ज्ञान क्रमानुसार, निश्चयवादी क्रियायें हैं।

२३—निर्भ्रान्तिज्ञानावस्था में अन्धकार तथा रहस्यता से मुक्त हैं।

२४—निर्भ्रान्त ज्ञान के लिये मानव को अवसर है ही उपदेश भी हैं।

२५—कालगत बुद्धि सैद्धान्तिक व ऐच्छिक भेद से, कालातीत बुद्धि मूल्यात्मक व पूर्णात्मक भेद से, विज्ञानात्मक बुद्धि रचनात्मक भेद से, अवैज्ञानिक बुद्धि अबोध व विवसता भेद से है।

२६—प्राप्त जानकारी को आवश्यकीय रूप में, रूपान्वित या परिवर्तित करने वाले प्रयास की व्यवसाय सज्ञा है।

२७—व्यवसाय, अन्नोत्पादन, जीव पालन, उद्योग, वाणिज्य पद व बुद्धि के भेद से हैं।

२८—खाने व पीने वाली वस्तु को उत्पन्न करने वाले प्रयत्न व व्यवसाय की अन्न व्यवसाय संज्ञा है।

२९—अन्न, प्राणान्न व जीवान्न भेद से है, वह आहार व औषधि भेद से है।

३०—अन्न, वनस्पति वर्ग से प्राप्त खाद्य सामग्री की प्राणान्न संज्ञा है।

३१—प्राण पोषण के लिये ही आहार योजना है, जिसमें आहरण (ग्रहण) करले उसकी आहार संज्ञा कहते हैं।

३२—दुर्बल जीवों को सबल ने भक्षण किया है। उसकी जीवान्न संज्ञा है।

३३—शस्य वनस्पति मात्र को उत्पत्ति प्राण पोषण के लिये हैं, जीव मात्र की उत्पत्ति जीने की इच्छा से है।

३४—दुर्बल को सताकर जो एक या अनेक सफलता अनुभव करते हैं, उसकी शोषण संज्ञा है।

३५—असह अस्तित्व का जान शोषण प्रवृत्ति रे है।

३६—अपराध पूर्ण अथवा शोषण व आतंक वादी प्रवृत्तियों अथवा मानव के लिये सुखदायी नहीं है।

३७—मानव ने जीव पालन क्रिया को जीवों से आवश्यकीय श्रम कराने के लिये उससे जन्य अन्न के लिये भूमि के दोहन के लिये उसे भक्षण करने के लिये और मनोरंजन के लिये किया है।

३८—भू-व्यवसाय खनिज के वनस्पति भेद हैं।

३९—मृद-पाषाण, मणि, धातु, रस व उसके विकार मात्र के उपयोग भेद से खनिज सम्बन्धी व्यवसाय है।

४०—अन्न, औषधि, वस्त्र, आवास तथा उपकरण के भेद से वनस्पति का व्यवसाय है।

४१—शिल्प, यंत्र, रसायन, आयुध, यान, वाहन, आवास, उपकरण के भेद से खनिज का व्यवसाय है।

४२—चित्र, मूर्ति, गृह, स्मारक भेद से शिल्प, यान, वाहन, आयुध, प्रसारण, आकर्षण, भेद से यंत्र, धातु, औषधि, द्युति, वायु, किरण, विकरण भेद से रसायन, मनोरंजन, स्थान, रंजन, भेद से रंजन सम्बन्धी उद्योग व उत्पादन हैं और मानव, जीव, वस्तु स्थान के आवश्यकता भेद से अलकरण सामग्रियाँ हैं।

४३—विस्तार पृष्ठ भूमि पर किये गये आकृति को चित्र छः ओर से सीमित चित्रण को मूर्ति, मानव के आवास योग्य रचना को गृह, स्मरणार्थ या स्मरण योग्य की रचना की स्मारक संज्ञा है।

४४—जल, थल, वायु व अंतरिक्ष में मानव संचार कर्म के साधन को यान, पर-भार को वहन पूर्वक स्थानान्तर करने के लिये प्रयुक्त साधन को वाहन, उपाय व वध के उपयोग भेद से आयु, तरंग के वेगवाही क्रिया को प्रसारण, उसे ग्रहण करने वाली क्रिया की आकर्षण संज्ञा है।

४५—गलन-पूर्वक रूप धारण करने एवं विद्युतग्राही पदार्थ को धातु, रोग नाशक द्रव द्रव्य को औषधि, परद्रवी करणवादी द्रव्य को द्युति, पारदर्शक व अपारदर्शक भेद से विकिरण, सारक व मारक भेद से रस, पोषक व शोषक भेद से किरण व वायु की क्रियायें हैं।

४६—स्वेच्छात्मक रूप परिवर्तन करने के लिये प्रयुक्त आवश्यक साधन को अलंकार संज्ञा है।

४७—बालरंजन, मनोरंजन के आवश्यकता भेद से उसका उद्योग व उत्पादन है।

४८—परोत्पादित वस्तुओं द्वारा लाभोत्पादन करने वाले उपाय की व्यापार संज्ञा है।

४९—उत्पादन, प्राकृतिक एवं मानव-कृत भेद से है।

५०—व्यापकता से अध्ययन एवं समन्वयात्मक प्रयास से व्यवसाय सफल है।

५१—हर प्रक्रिया के सम्पूर्ण पूरक तत्व को ध्यान में रखने वाली बौद्धिक प्रक्रिया या प्रणाली की समन्वय संज्ञा है।

५२—एक कुटुम्ब से अनेक लोक पर्यन्त पद सीमा है, जो कि आश्रय से ही सफल है अन्यथा से असफल है।

५३—प्राप्त पद से मानव अन्याय पर नियन्त्रण पाने के प्रयास से स्वर्गीयता का अन्यथा के धृष्टता से क्लेश का अनुभव किया है।

५४—मानव परस्पर स्नेह सम्बन्ध को पालन किये बिना विकास के बिना व्यापक दर्शन, व्यापक दर्शन के बिना समाधान, समाधान के बिना स्नेह स्नेह के बिना मानव जीवन सफल नहीं है, वह केवल ऊपर वर्णित नियमत्रय "बौद्धिक, सामूहिक एवं प्राकृतिक' पालन से ही है।

५५—समस्या मात्र का हल प्रस्तुत करने वाली क्रिया की बौद्धिक व्यवसाय संज्ञा है।

५६—सहज, मौलिकता से व्यापकता का और असहज मौलिकता के से संकीर्णता का दर्शन है।

५७—संकीर्णता की ओर रहस्यता का, व्यापकता की ओर अरहस्यता का अनुभव है।

५८—रहस्यता ही अन्धकार है, वह यथार्थता से दूर क्लेश की ओर है।

५९—रहस्यहीनता ही प्रकाश है, वह विश्व दर्शन व अनन्त आनन्द की ओर है।

रहस्यता से मुक्ति

१—रहस्योन्मूलन के लिये अथवा रहस्यता से मुक्ति पाने के लिये मानव ने अनवरत प्रयास किया है।

२—बौद्धिक अवस्था भेद से ही दर्शन भेद है।

३—बौद्धिक क्षेत्र के विकास से अवस्थायें प्राप्त हैं, वह प्रधानत: तीन स्थितियों में पायी जाती हैं, वह पूर्ण चेतन, अर्धचेतन एव अत्य चेतनात्मक की संज्ञा से जानी हैं।

४—मानव को आध्यात्मिक, आदि भौतिक एवं बौद्धिक दर्शन का अवकाश है।

५—समष्टात्मा के अस्तित्व को पूर्ण मूल्यन सहित स्वीकृत को आध्यात्मिक, किसी इकाई के अस्तित्व को पूर्ण मूल्यन सहित स्वीकृत एवं प्रमाणित को बौद्धिक (दैविक) व पदार्थ मात्र की ही मौलिकता को सर्वोच्च स्वीकृति एवं प्रमाणित मन:स्थिति को आधि भौतिक अवस्था की संज्ञा है।

६—आध्यात्मिक अवस्थावादी जीवन से स्वकल्याण का प्रमाण है, वह उसके नित्यत्व एवं पूर्णत्व से, वह उसके व्यापकता एवं अस्तित्व से वह पूर्ण समाधान से निर्णित एवं अनुभव गम्य है।

७—बौद्धिक अवस्थावादी जीवन में सह-अस्तित्व का मार्ग उज्ज्वल है, वह उसके अमरत्व एवं पवित्रता से, वह उसके सरलता एवं विकास से वह नियम पालन एवं निष्ठा से निर्णित एवं क्रियान्वित है।

८—आदिभौतिक अवस्थावादी जीवन से असह-अस्तित्व है। वह उसके अनित्यत्व व परिणामत्व से, वह उसके आसक्ति व अभिमान से, वह उसके हिंसा व प्रतिहिंसा से, वह उसके आवश्यकीय नियमों के तिरस्कार व अबोधता से निर्णीत है।

९—आवश्यकीय नियम के विपरीत वादी प्रवृत्ति को सर्वथा तिरस्कार करने वाला बौद्धिक क्रिया प्रणाली को त्याग, क्लेश सापेक्षता से मुक्त तथा

आवश्यकीय नियम पालन करने वाली प्रवृत्ति की वैराग्य संज्ञा है। जिसे समझ के अनुसार जो मूल्यता हो वह उस मानव की आशा है जो आशातीत या प्रयास के रूप में है।

१०—भौतिक वादी परयंत दर्शन से ४ प्रकार के विषय व अन्यायवादी ईर्षा से आसक्ति एवं उसके लिये ही सम्पूर्ण चेष्टायें हैं।

११—बौद्धिक (दैवी) मूल्यन पर्यन्तवादी दर्शन से न्यायपूर्ण ईषणायें और उत्तरदायित्व को वहन करने में आसक्ति व प्रयास हैं।

१२—आध्यात्मिक मूल्यनवादी दर्शन से असंग्रह व लोक से अनासक्ति व्यवहार दिशा में कर्तव्य पालन और तृप्ति का अनुभव है।

१३—स्थूल दर्शन का भौतिक सूक्ष्म दर्शन का बौद्धिक अथवा दैविक तथा कारण दर्शन का आध्यात्मिक दर्शन संज्ञा है।

१४—समष्टास्तित्व को महत्तात्व, व्यष्टि अस्तित्व को कारण, बुद्धि को कारण सूक्ष्म, चिन्तन, वृत्ति को सूक्ष्म, मन को सूक्ष्म स्थूल और प्राण, शरीर व उसके कार्य की स्थूल संज्ञा है।

१५—स्थुल पर सूक्ष्म का, सूक्ष्म पर कारण का नियंत्रण है, और कारण महाकारण के निरन्तर सम्पर्क में है, जिस क्रम का विरोध या निरोध नहीं है।

१६—सूक्ष्म से मुक्त स्थुल, कारण सम्बन्ध से मुक्त सूक्ष्म, क्रिया प्राप्त नहीं।

१९—महाकारण का शक्ति कारण का परमाणु, सूक्ष्म का अणु तथा उसके संगठित अवस्था की स्थूल संज्ञा है।

१८—स्थूल, मरन, धरम से, सूक्ष्म असर धरम से, कारण नित्य धर्म से प्रतिष्ठित है। जो क्रम से तीव्र परिणाम दीर्घ परिणाम एवं अपरिणाम तत्व से है, वह उनमें स्थित स्वभाव एवं नियति क्रम से निर्णित है।

१९—विज्ञान का बौद्धिक विकास व ह्रास भेद से ही प्रादुर्भाव हुआ है, जिसको पाकर मानव ने अनेक बौद्धिक स्थितियों का अनुभव किया है।

२०. ज्ञान सर्वत्र एक सा विद्यमान है। उसका स्पर्श सम्पूर्ण जगत को या अनन्त को अनवरत प्राप्त है। वह उसकी व्यापकता से निर्णित है।

२१. ज्ञान का ग्रहण माध्यन भेद से है। माध्यम उसके संस्कार भेद से है, उसके संस्कार वातावरण अध्ययन एवं प्रयास भेद से है। प्रयास वातावरण अध्ययन ज्ञान के अनुसार ही है इसलिये यह सब मानव जीवन के पूरक चार तथ्य हैं।

२२. कोषों के विकास भेद से अवस्था तदानुसार ही दर्शन भेद है।

२३. दर्शन भेंट से आसक्ति, आसक्ति भेद से प्रयास, प्रयास भेद से विकास विकास भेद से कोषों की व्यवस्था, कोषों की व्यवस्था भेद से ही दर्शन भेद हैं।

२४. ज्ञान (जानकारी) व्यापक, पूर्ण एव शक्त होने के कारण कहीं भी उसका अभाव नहीं है और न्यूनातिरेक भी नहीं है।

२५. वह एक ही सत्ता (ज्ञान) पदार्थों को सक्रिय, प्राणावस्था को प्रेरणा पूर्वक सक्रिय, जीवावस्था को इच्छा पूर्वक प्रेरणा सहित ज्ञानावस्था को ज्ञान पूर्वक इच्छा प्रेरणा सहित सक्रिय किया है।

२६- पूर्ण ज्ञान के ज्ञाता केवल स्वरूप ही है, वह उसके नित्यत्व से वह उसके पूर्णत्व में, वह उसके सर्वज्ञात्व से वह उसके अपरिणायत्व से प्रतिष्ठित है।

२७. स्व-स्वरूप स्वयं ही ज्ञाता है क्योंकि उसे अनवरत साम्य शक्ति का संग अनवरतऊ व्यवधान रूप में, प्राप्त है, इसीलिए उसके बोध मात्र से ही सम्पूर्ण संसार के सर्वस्व को समझने की क्षमता, योग्यता, पात्रता, बुद्धि को स्वभावतः उत्पन्न होती हैं।

२८. बुद्धि का स्वामी स्व-स्वरूप, स्व-स्वरूप का स्वामी ज्ञान, चिन्त की ध्यायी बुद्धि, वृत्ति की ध्यायी चिन्त, मन की ध्यायी वृत्ति है।

२९. मन तक ही जानकारी करने की क्षमता है।

३०. भौतिक आसक्ति भेद से ही विकास, ह्रास एवं स्थितियां हैं।

३१. शरीर से प्राण, प्राण से मन, मन से वृन्ति, वृत्ति से चिन्त, चित्त से बुद्धि, क्रमशः अधिकाधिक सूक्ष्म, बलवान एवं विकासशील है।

३२. मन, वृन्ति, चिन्त, बुद्धि निर्भान्ति अवस्था में पूर्ण विकसित प्रान्तावस्था में अत्य विकसित, भ्रान्ताभ्रान्त अवस्था में अर्द्ध विकसित, जीवावस्था में अविकसित, प्राणावस्था में मूर्छित पदार्थावस्था में सुप्त है, वह उसका क्रिया कलाप के अनुसार निर्मित है।

३३. शक्ति का अस्तित्व निर्णय पदार्थ से पदार्थ मात्र की चेष्टा शक्ति से ही है।

३४. आदि परमाणु अहंकार को शक्ति का संग प्राप्त है। इसीलिये वह पूर्ण ज्ञाता का पद में है।

३५. बुद्धि को अहंकार के ज्ञान आश्रय सहित, चिन्त को बुद्धि के वृन्ति को चिन्त के, मन को वृन्ति के आश्रय सहित क्रमानुसार यथार्थ दर्शन हुआ है, अन्यथा विपरीत है।

३६. ज्ञान दर्शन भेद से आसक्ति आश्रय दृष्टि व दर्शन है।

३७. स्व-स्वरूप एवं बुद्धि के सम्बन्ध भेद से बोध, बुद्धि का बुद्धि के लक्ष्य भेद से चिन्तन, चिन्त का वृत्ति के लक्ष्य भेद से तुलना तथा वृन्ति व मन के लक्ष्य भेद से मनन है।

३८. आश्रय लक्ष्यक्रम से उत्थान व विकास तथा आश्रित लक्ष्य क्रम से ह्रास व पतन है।

३९. ज्ञान प्राप्त सत्ता है, उसके लिए प्रयास नहीं है, प्रयास केवल उसे ग्रहण करने में जो अन्तराय है उसके लिए ही है।

४०. सापेक्षता में जो आसक्तियां हैं, उसे अन्तराय संज्ञा है। इसीलिए निरपेक्षता ही उसका आवश्यकीय साधन है।

४१. प्रसव व प्रलय की ओर, प्रलय प्रसव का और व्यस्त है जो भौतिकता की सीमा है।

४२. विचारमात्र क्रिया के लिये, क्रिया मात्रमात्र विचार के लिये व्यस्त है, जो बौद्धिकता की सीमा है।

४३. ज्ञान अपरिवर्तन शील एवं शास्वत तथा व्यापक है, जिसकी आध्यात्मिक संज्ञा है।

४४. सापेक्षता अनित्यवादी है वह उसके परिणाम एवं स्थानांतरण तत्य से निर्णित है।

४५. माध्यम भेद से बोध, दर्शन, आशा, अवस्था, प्रयास, प्रभाव प्रलय, प्रमय एवं माध्यम भेद है।

४६. पदार्थ, प्राण, मन, वृन्ति, चिन्त, बुद्धि व अहंकार इन कला का भी नाश व अभाव नहीं है क्योंकि जो नहीं था उसकी उत्पत्ति नहीं है।

४७. केवल पदार्थ का ही परिणाम है, वह उसके आण्विक दशा में अनुश्चात सक्रियता है, उनसे निर्णित है।

४८. पदार्थ, परिणामवादी, प्राण तरङ्ग वादी (प्रेरणवादी) मन चयन वादी, वृन्ति तुलनवादी, चिन्त चित्रणवादी, बुद्धि बोध वादी एवं स्वस्थ्य नित्यवादी है।

४९. स्वरूप तीनों काल में एक सा विद्यमान है, इसीलिये कि अस्तित्व का परिवर्तन नहीं है, या अभाव नहीं है।

५०. स्वस्वरूप या परस्वरूप बोध से बुद्धि पूर्णापूर्ण चित्रण भेद से चिन्त, सत्यासत्य, धर्माधर्म, न्यायान्याय, लाभालाभ, प्रियाप्रिय, हिताहित तुलन भेद से वृत्ति, परानुक्रय व पूर्वानुक्रय भेद से चयन हैं, यह सब विषयानुक्रमा योगानुक्रम क्रम में व्यस्त है।

५१. वृत्ति, चित्त, बुद्धि के अनुकूल वादी प्रेरणा, शृंखला से युक्त मनः स्थिति को पुर्वानुक्रम व प्राण, हृदय शरीर उसके व्यवहारानुकूल प्रेरणा क्रम की परानुक्रम संज्ञा है।

५२. पदार्थ में आशक्ति से संग्रह व लोभ प्रणह में आशक्ति से मोह या द्वेष का, जावत्व में आसक्ति से अभिमान व ईर्ष्या का, ज्ञान में आसक्ति से कर्तव्य, त्याग व प्रेम की मूल प्रवृत्तियां सक्रिय होती हैं।

५३. पूर्णपूर्ण भेद से ही आसक्ति भेद है।

५४. स्वस्वरूप बोध का पूर्ण बोध, उससे वंचित बोध की अपूर्ण-बोध संज्ञा है।

५५. पूर्व बोध से त्याग एवं अपूर्ण बोध से ही भोग की आसक्ति है।

५६. पूर्ण बोधाधिकार केवल मानव में ही है, अन्य किसी में भी नहीं पाया जाता है, इसीलिये उसके बिना वह सुख नहीं है।

५७. स्वरूप बोध योग की परिपाटी से एवं प्रयास से ही सफल है और भोगवादी परिपाटी से एवं प्रयास से असफल है।

योग

१—मिलन की योग संज्ञा है।

२—सजातीयता में एक्य, अन्यथा में सहवास सिद्ध हुआ है। अस्तु सहवास का वियोग निश्चित है।

३—व्यष्टि व्यवहार शरीर प्राण मन, बुद्धि, चित्त वृद्ध एवं अहंकार की क्रम से सजातीयता समष्टि में है। इसलिए समाष्टित को विष्टत्व में, विष्टित्व को समाष्टित्व में मिला लेने का अवकाश नियम का प्रावधान है।

४—व्यवहार, शरीर, एवं प्राण यह विषय वादी तथ्य है। मन, वृत्ति चित्त यह विषय वादी तथ्य है। बुद्धि सम विषम तथ्य तथा स्वरूप निरन्तर समवादी तथ्य है।

५—ईश्वरीय ऐश्वर्य एवं प्रभुता को स्वस्वरूप ने अनुभव किया है। जिसके फल स्वरूप उसके बिम्ब प्रतिबिम्ब न्याय से बुद्धि ने बोध किया है। चित्त ने चित्रण किया है वृत्ति ने कल्पना की है, मन जिसको पाकर चेतना से परिपूर्ण है। प्राण उसे पाकर प्रेरणा शक्ति से समृद्ध है। (यानि प्राण वायु में प्रेरणा ही ईश्वरीय शक्ति है अर्थात् वही प्रेरक है।)

५—(अ) स्वरूप में (तत्त्व) उस ईश्वर की व्यापकता को अनुभव करने के लिये, बुद्धि बोध करने के लिये चित्त चिन्तन करने लिये वृत्ति कल्पना करने के लिये, मन चेतना पाने के लिये तथा प्राण प्रेरणा पाने के लिये सतत व्यस्त हैं।

५—(ब) स्वस्वरूप निरन्तर ईश्वरानुभूति कर रहा है, इसीलिये ईश्वर प्राप्त तथ्य सिद्ध हुआ उसके अनुसार मानव, पशु, राक्षस, देव और दिव्य मानव की दृष्टि से बुद्धि, चित्त, वृति मन, प्राण हृदय शरीर और व्यवहार में अवस्थित होने के कारण उक्त पाँचों प्रकार के मानव बनने का अवकाश मानव जीवन में प्रकृति दत्त अवसर है।

६—स्वस्वरूप से शरीर तक क्रम से न्यून बल होने के कारण ही उनमें ग्रहण शक्ति भी क्रमशः न्यून है इसलिए उनमें भ्रान्ति या विभ्रांति का अवकाश निहित है।

७—मानव ने अपने विचारों (इच्छा को सिन्त में सम विषम का कर्म की स्थिति में विषम समता का भोग की स्थित में पूर्ण है। विषमता का औप योर की स्थिति में पूर्ण समता का अनुभव किया है।

८—समता ही सुख है जिसकी प्रतिज्ञा मानव में अनवरत की है।

९—जानकारी की आवश्यकता में इच्छा, इच्छा की आवश्यकता में क्रिया, क्रिया की आवश्यकता में फल, फल की आवश्यकता में भोग और भोग का अनुपात में अनुभव के साथ अनुमान सनिहित हो जाने के कारण जानकारी विपुल हो जाती है।

१०—जो दुर्बल है उसमें संकीर्णता होती ही हैं क्योंकि ह्रास के बिना दुर्बलता नहीं है। और दुरुपयोग के बिना ह्रास नहीं है।

११—जो जिसको मूल्तम मानव से जानते और चित्रण किया करते है उसी क्रिया अपने तन मन धन को व्यय करते हैं फलस्वरूप ही योग और योगानुभूति है।

———

आनन्द की अनुभूति

१—व्यय भेद से आय भेद है। बुद्धि, चित्त, वृत्त, सदन, शरीर एवं व्यवहार में ही आय एवं व्यय का अवकाश है न कि स्वरूप में।

२—जो जिसमें आ सकता है वही उसके लिए मूल्तम है।

३—जानकारी के लिए चाह, चाह के लिए जानकारी, चाह के लिए क्रिया, क्रिया के लिए चाह, क्रिया के लिये भोग, भोग लिए क्रिया ही मानव को व्यस्त किए हुए हैं। इन लोभ-विलोम परि-पाटी भेद से ही मानव में अनेक बौद्धिक स्थितियां हैं। तदानुसार ही व्यवहार में अति-विषमता का व समता का अनुभव है।

४—मानव की एक सूत्रता केवल नियमन्नय पालन से ही है।

५—व्यापक - व्याकता एवं अव्यापकता मात्र एवं अन्य अनुभव एवं अधिकार भेद से मानव की जानकारी है।

६—रूप-क्रिया, गणना, काल, समवेज्ञ, संग, ग्रहण, विसर्जन, गुण स्वभाव कारण यह सब स्थूल व सूक्ष्म भेद से है। जो मानव के द्वारा जानकारी में व्यक्त है। उन सब में व्यापक जो तीनों कालों में एक से विद्यमान एक से बौद्ध गम्य एक सुखप्रद सत्ता है। उसके अनुभव को अव्यक्त या ईश्वरानुमति संज्ञा दी जाती है।

७—लोक एवं लौकेश के लक्ष्य भेद से इच्छा विषय व निःविषय भेद से ज्ञान, विधि व निषेध के कार्य, एवं कर्म विहित व अविहित भेद से भोग है।

८—अवस्था भेद से अशक्ति, आशक्ति भेद से आवश्यकता, आवश्यकता भेदसेत्रम, श्रम भेद से फल, फल भेद से अनुभव, अनुभव भेद से अवस्था भेद है।

९—सहजात्मक, लोकात्मक एवं विषयात्मक इन तीनों स्थितियों में या उसके मिश्रित अवस्था में मानव की स्थितियां हैं।

१०—भाव क्रमशः, निभ्रान्ति, भ्रान्ति और भ्रान्तिभ्रान्त अवस्था में स्थित हैं। फलस्वरूप ये सहजवादी ईष्णावादी और विषयवादी प्रवृत्तियों में रत है।

११—सहजवादी ज्ञान नित्यता में, (समाधान में), लोकवादी विज्ञान ईर्ष्णा में, (समस्या व समाधान में) विषयवादी विज्ञान ईर्ष्या द्वेष में (चतुर्विषयों में तथा समस्या में) तथा विवशता में व्यस्त है।

१२—सहज शक्ति में विश्राम, लोक शक्ति में श्रम विज्ञान, विषय शक्ति से केवल श्रम का अनुभव है। इसीलिए लोकवादी समस्त ईकाइयों में श्रम अनुभूति है। फलस्वरूप वे अतृप्त है।

१३—सहजोन्मुखता नित्यवादी लोकोन्मुखता अमरवादी एवं

विषयोन्मुखता मानव के लिए मरणवादी तथ्य है। जिस प्रकार अति-व्याप्त अनाव्यर्थ होने से ही मनुष्य दुःख एवं भ्रम का अनुभव करता है।

१४—उद्देश्य साधन भेद से उपयोग, उपयोग भेद से फल भेद फल भेद से साधन भेद है। साधन भेद से उद्देश्य भेद है।

१५—अन्तरंग एवं बाहरंग भेद से साधन मात्र की गणना है।

१६—अस्तित्व, आनन्द, वृति, धी, निश्चय, ज्ञात, मेधा श्री, संतोष, कान्ति, स्मृति कला, चिन्तन विद्या, प्रसा, शान्ति वृत्ति, कीर्ति जाति, क्षन्ति दया भ्रांति चयन तथा सुख २४ प्रकार के अन्तरंग साधन हैं।

१७-तन, धन, ऋन, एवं यह चार प्रकार के बहिरंग साधन प्रसिद्ध है। जो अन्तरंग साधन के आश्रित हैं। अन्तरंग एवं बहिरंग साधन वान्छित सिद्धियां हैं।

१८—प्राप्त साधनों को उपयोग भेद से ही मानव के व्यक्तित्व को चित्रण एवं सुख और दुःख का अनुभूतियाँ हैं।

१९—आस्तित्व स्वरूप का, आनन्द धृति धी निश्चय यह चार बुद्धि का, श्रुति, मेधवा, श्री संतोष, कान्ति, स्मृति, कला, चिन्तन यह आठ चित्त का, विज्ञा, प्रज्ञाकान्ति, वृत्ति, कल्पना कीर्ति, जाति क्षन्ति यह आठ वृत्ति की दया ,सुख चेन यह तान मन की भी प्रतिरूप और अनुरूप है।

२०—अस्तित्व का परिणाम परिवर्तन नहीं है। क्योंकि स्व स्वरूप नित्यवांदी तथ्य है।

२६—आनन्द दाई २३ प्रकार का ऐश्वर्य उसकी धारण करने वाले मन वृति चित एवं बुद्धि के विकास व ह्रास भेद से सफल तथा असफल है। वह उसके व्यवसाय भेद से हैं। व्यवसाय भेद आशक्ति भेद से हैं। आशक्ति भेद से हैं। आशक्ति भेद उसकी आवश्यकता भेद से

है। आवश्यकता भेद उसके कामना भेद से है। कामना भेद प्रेरणा भेद से है। विवेक भेद उसके व्यवसाय भेद से मर्यादित है। प्रेरणा भेदी एवं विज्ञान के प्रादुर्भाव भेद से विवेक व विज्ञान का प्रादुर्भाव है।

२२—जो तीनों काल में एकसा विद्यमान है तथा जिसकी इकाई का नास वहीं होता है उसकी इकाई का अस्तित्व (स्व स्वरूप) संज्ञा है।

२३—सम्पूर्ण व्यवहार से मुक्त अवस्था के बोध करने वाले बौद्धिक स्थिति को आनन्द तथा ऐसी अवस्था को संज्ञा है। समस्या मुक्त बुद्धि की ही समाधान संज्ञा है।

२४—भय के अत्याभाव की ही धृति संज्ञा दी है।

२५—जानकारी को ग्रहण करने वाले बौद्धिक अंग की धी संज्ञा है।

२६—जानकारी मात्र की व्यवस्था करने वाले प्राप्त संवेगों की श्रुति संज्ञा है। जो जैसा है वैसे ही स्वीकार करने वाले बौद्धिक क्रिया की निश्चय संज्ञा है।

२७—जानकारी के लिये जो प्रयत्न विशेष हैं या प्रयत्न करने वाला बौद्धिक अंग है, उसकी सेवा संज्ञा है।

२८—समृद्धि दर्शन की श्री संज्ञा हैं।

२९—समृद्धि दर्शन की प्रतिक्रिया तथा अनुभव की सन्तोष संज्ञा है।

३०—बुद्धि की क्रान्ति संज्ञा है जो ज्ञानाणु की क्रिया विधि का रूप है।

३१—प्रत्यक्ष अनुमान एवं गणित से किए गए समस्त प्रगति एवं अनुभव को समय-समय पर पुनः प्रस्तुत करने वाली प्रतिदर्शन क्रिया की स्मृति संज्ञा है।

३२—व्यवहार मात्र की कला संज्ञा है । स्पष्टीकरण क्रिया की चिन्तन चित्रण संज्ञा है ।

३३—जो जैसा है वैसा ही निर्वाचित, परिमार्जित एवं परिलक्षित दर्शन क्रिया के विधा संज्ञा हैं ।

३४—हल (समाधान) प्रस्तुती करण क्रिया की प्रज्ञा संज्ञा है ।

३५—आघातहीन स्थिति की शान्ति संज्ञा है ।

३६—व्यवहार तुलना कार्य की (तारतम्यता) की वृति संज्ञा है । न्याय को स्वीकार करने वाली क्रिया की कीर्ति संज्ञा है ।

३७—रूप, गुण, स्वभाव, जन्य, विषमता की जाति संज्ञा है ।

३८—क्षमता की क्षान्ति संज्ञा है ।

३९—लोक सौन्दर्य से जो व्यवहार से उत्कट आशक्ति की प्रीति संज्ञा है । तथा आस्वादन क्रिया की चयन संज्ञा है ।

४०—जीने देने की दया संज्ञा है ।

मानव के लिए आवश्यकीय विषयों में निर्विरोधता की सुख संज्ञा है ।

४१—दोष रहित व्यवहार से समृद्धि, शरीर, व हृदय के समत्व से तृप्त हृदय एवं प्राण के समन्वय आरोग्य व पुष्टि प्राण व मन के समत्व से बल एवं स्फूर्तिमन व शान्ति के समत्व से सह-अस्तित्व तथा सुख वृत्ति व चित्त के समत्व से शान्ति एव प्रगति, चित्त व बुद्धि एवं स्वरूप के समत्व से सन्तोष एवं विलास, बुद्धि व स्व स्वरूप के समत्व से आनन्द एवं पूर्णता की उपलब्धि है ।

४२—तन बल···आहार विहार की पवित्रता से जल बल धर्म पूर्ण आचरण एवं धैर्य से, धन बल विज्ञान पूर्ण प्रणाली एवं व्यवसाय से, तथा पदबल न्याय पूर्ण नीति एवं निर्णय से ही सफल होता है । अन्यथा असफल होता है ।

ॐ शान्तिः — शान्तिः — शान्तिः

उपसंहार

इस प्रकार हम पाते हैं कि बुद्धि की अवस्था में दिव्य मानव, चित्तावस्था में देव मानव, वृत्तावस्था में पशु मानव तथा प्राण (बल) व हृदय की अवस्था में (विषयों में) राक्षस मानव की गतियां हैं ।

बुद्धि की अवस्था में समाधान बराबर आनन्द की, चित्तावस्था में संतोष की वृत्तावस्था में शान्ति की, मनावस्था में सुखी की कामनाऐं हैं । प्रांण व हृदय (विषण) की अवस्था में बिकलता व विवशताएं हैं । इसलिए मानव जब कभी भी अपने अयोग्य धरातल में जीविका को व्यवस्थित करने जाता है उसी समय से मानवता की निम्न कोटि की स्थिति में बौद्धिक स्थितियां उपस्थित हो जाती हैं । क्षोभ इसलिए होता है कि वृहद वस्तु अल्प वस्तु में नहीं समाती । इसी नियम के अनुसार मानव जितना जान जाता है उतना कर नहीं पाता । जितना कर पाता है उतना कर पाता है उतना भोग नहीं पाता है । उक्त नियम के अनुसार जो मानव भोग में अपने कर्म तथा अपनी जानकारी (विचार) को निहित करने जाता है वह सफल नहीं होता है । क्योंकि नियमों का उल्लंघन किया ही नहीं जा सकता है । नियम प्राकृतिक होते हैं जबकि मानव कर्म करने में पूर्ण स्वतन्त्र और उसके फल भोगते समय पूर्ण परतन्त्र हैं । इसीलिए मानव को जन्म सिद्ध अवकाश है कि वह नियम (त्रय) का पालन करे या पालन न करे । आवश्यकीय नियमों का पालन किया जा सकता है किन्तु नियमों को तोड़ा नहीं जा सकता है ।

मानव सुख की धारणा की पूर्ति करने के संदर्भ में, अपने जीवन-काल में व्यवहार में निम्न क्रम से सफलता का अनुभव करता है:—

संसार के मानव चार वर्ग में परिगणित हुए हैं।

(१) सुखी (२) दुखी (३) पुण्यआत्मा और (४) पापात्मा।

सुखी वह है जिनके पास अपेक्षा कृत अधिक सुख सम्पदा एवं सुविधाएं हैं इसके विपरीत में वह दूसरे की तुलना में अपने को दुःखी मान बैठता है। नियम पालन पूर्वक प्राप्त व्यक्तित्व को ही पुण्यात्मा कहते हैं। इनके विपरीत में विषयों के वशीभूत मनमानी करने वालों को पापात्मा कहते हैं। इन चार प्रकार के वर्ग में ही एक से अनन्त मानव हैं।

इनके साथ हर एक मानव का व्यवहार—औचित्य निम्न प्रकार से हैं–दुखी के साथ दया भाव (सहयोग पूर्ण), सुखी के साथ संतोषभाव (ईर्ष्या से मुक्त) पुण्यात्मा के साथ पूज्य भाव (अनुकरण—अनुसरण) पापात्मा के साथ तटस्थ भाव (घृणा रहित) होने में भी लौकिक व्यवहार की सफलता है।

व्यवहार में बुद्धि एवं स्व स्वरूप का संतुलन तभी सम्भव हुआ है जब बुद्धि अपनी दृष्टि से स्व स्वरूप की ओर प्रस्तुत (सन्मुख) हो जाय। बौद्धिक स्थिति जब तक लोकासक्ति से (आकर्षण से) मुक्ति न पा जाय तब तक स्व-स्वरूप की ओर दृष्टिवान नहीं होता है। इसलिए लोक के साथ निराकर्षण ही स्व स्वरूप के साथ सम-कर्षण है। जिसको समाधि रूप में अनुभूति तथा व्यवहार में समाधान के रूप में अनुभव किया गया है।

बुद्धि व स्व-स्वरूप का समत्तव बराबर है सामाधि अर्थात विषमता से मुक्ति। समाधि के प्रतिबिम्ब बराबर हैं समाधान, उसके अनुबिम्ब बराबर है सर्वत्र व्यापक ज्ञान उसके प्रत्येक प्रत्यानुबिम्ब बराबर है तीव्र-स्मरण। जिसका अधिकार केवल ज्ञानावस्था में निभ्रन्ति मानव को ही पूर्ण अवसर सहित प्राप्त है।

बुद्धि की विषमता बराबर है विचार तथा बुद्धि के समत्व बराबर है निविचार। बुद्धि के निविचार बराबर ही लोक से निरकर्षण और

प्रतिकर्षण, उसी के फलस्वरूप में स्वस्वरूप बराबर सम.कर्षण है।

जब बुद्धि व्यवहार अर्थात लोक के गर्भ में निहित होती है तब वह बुद्धि संसार की स्वामी, कर्ता आदि आरोप से भारित हुआ करती है—जिसे लोक से आसक्ति की संज्ञा दी जाती है। लोक का रूप निम्न प्रकार से पहले भी स्पष्ट किया जा चुका है:--इच्छा को पूर्ति के लिए इच्छा व्यस्त है जिसकी लोक संज्ञा है और जिसकी पूर्ति न हो उसकी पूर्ण समझना या पूर्णता की आशा में प्रतीक्षा करना ही भ्रान्ति है। जिसे लोक शक्ति के नाम से बताया है। अर्थात अनावश्यक प्रयास ही आसक्ति सिद्ध हुआ है।

इसलिए मानव को अनावश्यकीय कार्य व प्रयास में सफल होने का प्रश्न नहीं उठता। मानव को सही कार्य जिसके सुख की उपलब्धि हो ऐसे ही कार्य व प्रगति के लिए ही जीवन प्रदान किया गया है।

चित्त और बुद्धि के समत्व के बराबर में संतोष है उसका प्रतिबिम्ब व्यवहार में है सरलता के रूप में है:—उसका अनुबिम्ब ईर्ष्यारहित रूप में व्यक्त हुआ है, जो जन समुदाय के लिए अत्यन्त ही उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वृत्ति और चित्त के समत्व का अनुभव है। उसकी प्रतिबिम्ब दशा में गंभीरता उसके अनुबिम्ब में परिमार्जित है कार्य—कलाप एवं लोक के समस्त व्यवहार हैं इस प्रकार की बौद्धिक स्थिति के लिए मानव न जाने कितने काल से प्रत्याशित है। वह मनुष्य जीवन में स्वयं में आवश्यकता (चाह) का अनुभव होने मात्र से उपलब्ध है क्योंकि ऐसा कोई भी ज्ञान नहीं है जो प्रकृति के गर्भ में उपलब्ध न हो और जिसे प्रकृति ने छिपा रखा हो।

मन और वृत्ति के समत्व में है सुख उसके प्रतिबिम्ब में है स्वर्गीयता (निर्विरोध) का अनुभव है। जिसकी पूर्ति क्रम से नियमों का पालन

करने (मानने से) नियमों को जानने से अर्थात प्रकृति के गर्भ से नियमों का दर्शन करने से (परीक्षण करने) ही मानव ने विधिवत् सुख, शान्ति, संतोष और आनन्द की उपलब्धियाँ की हैं।

मौलिकता का दायित्व मन पर, जानने का दायित्व वृति पर, मानने का दायित्व चित्त पर, परीक्षण करने का दायित्व बुद्धि पर ही निर्भर किया है—जिसकी सफलता एवं असफलता मानव की भ्रान्ति, निर्भ्रान्ति एवं भ्रान्ताभ्रान्त अवस्था में भेद से ही परिलक्षित है। अस्तु मानव ने अपनी स्वेच्छा से ही सुख और दुख का अनुभव तथा चयन किया है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

श्री नागराज शर्मा

भजनाश्रम, अमरकंटक

तारीख १२/१/७०

स्मरणीय व्यवहारिक सूत्र

(१) व्यवहार दर्शन का उपरोक्त विश्लेषण मानव के सह-अस्तित्व, विकास व समृद्ध जीवन के उद्देश्य से हुआ है।

(२) विज्ञान से सुखी होने के लिए विवेक करके अपनाना अतिआवश्यक है, क्योंकि ये परस्पर पूरक हैं।

(३) मानव को अपने समाधान के लिए, जाने हुए को मानना और माने हुए को जानना, ही होगा।

(४) हीनता, दीनता व क्रूरता की पीड़ा से मुक्ति के लिए धीरता, वीरता व उदारता की अपनाना ही होगा।

(५) चेतना की व्यापकता को अनुभव करने के लिए विश्व से निर्विरोध होना ही पड़ेगा।

(६) यदि चारित्रिक अनुशासन की आवश्यकता हो तो कृतज्ञता को अपनाना ही होगा।

(७) वे बातें जो प्रयोग द्वारा सिद्ध न हों, वे न तो कहो और न ही सुनो। अनुभवहीन बातों का उपदेश बन्द करो।

(८) प्रण करो—न तो हिंसा करूंगा और न करने दूंगा। संकल्प करो कि परधन की आशा नहीं करूंगा साथ ही यह भी निश्चय करो कि स्वधन का अर्जन करूंगा।

(९) हर इकाई संसार का अभिन्न अंग है। उसके पूर्ति जो व्यवहार है वह संसार के प्रति है क्योंकि संसार भी स्वयं उससे अभिन्न है।

(१०) मानव के नाश से मानव विकास नहीं किन्तु यह भी मत भूलो कि परनाश की प्रतिक्रिया में स्वनाश निश्चित है।

(११) यह स्वीकार करो कि पुरुष के लिए यतीत्व, स्त्री के लिए सतीत्व बुनियादी आवश्यकताएं हैं।

(१२) समस्त बातों को मानवीयता की दृष्टि से सोचो, समझ जावोगे। समस्या का बाजार लगाना बन्द करो क्योंकि समाधान ही गंतव्य है।

(१३) यह भूल जावो कि ईश्वर किसी की प्रार्थना से वशीभूत होकर दूसरों को क्षति, धोखा देगे। साथ ही साथ यह भी याद रखो कि ईश्वर व्यापक है।

(१४) उठो चेतो—अपने अज्ञान व अपराध को अध्ययन व प्रायश्चित से धोओ। मनुष्य से स्नेह करना सीखो, उसे दृढ़ व अविरत बनाओ।

(१५) याद रखो जीवन की सफलता, न्यायपूर्ण, अनुशासन सहित आचरण, उपदेश, प्रचार, प्रदर्शन तथा व्यवस्था से ही होगें।

(१६) राष्ट्र में निष्ठा तथा मानवीयता में विश्वास रखो।

(१७) वर्तव्य ही पूजा है। विवेक व विज्ञान का अध्ययन ही आश्रय है। प्रयोग ही विकास है। व्यवसाय से ही समृद्धि है। वीरता से ही अपराध का दमन है। धीरता एवं उदारता से ही सामाजिक स्वर्गीयता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।